भाग चार

अध्याय पैतालीस

हास्य भक्तिरस

भक्तिरसामृतसिंधु के चतुर्थ भाग में श्रील रूप गोस्वामी ने सात प्रकार के गौण भक्ति-रसों का वर्णन किया है। ये हैं—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स। इस भाग में उन्होंने इन भावों की परस्पर मैत्री तथा विरोध का भी वर्णन किया है। जब एक प्रकार का भक्ति-रस दूसरे प्रकार के भक्तिरस को विरोध-भाव से आच्छादित कर लेता है तो इसे *रसाभास* कहते हैं।

दक्ष विद्वानों का कहना है कि हास्य प्राय: युवकों में अथवा वृद्धों और बालकों के संयोग में पाया जाता है। कभी-कभी यह अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वालों में भी पाया जाता है। एक बार एक बूढ़ा संन्यासी यशोदा माता के द्वार पर पहुँचा तो कृष्ण ने यशोदा से कहा, ''हे मैया! मैं इस दुबले-पतले शैतान के पास नहीं जाना चाहता। यदि मैं जाऊँ तो वह मुझे अपनी झोली में भर कर दूर ले जा सकता है।'' इस तरह वह अद्भुत बालक कृष्ण अपनी माता की ओर देखने लगा और द्वार पर खड़ा संन्यासी अपनी हँसी को छिपाने लगा, किन्तु वह ऐसा न कर सका। उसने तुरन्त ही अपनी हँसी प्रकट कर दी। इस उदाहरण में कृष्ण स्वयं हास्य के आलम्बन हैं।

एक बार कृष्ण के एक मित्र ने उन्हें सूचित किया, ''हे कृष्ण! यदि तुम अपना मुँह खोलो तो मैं तुम्हें दही-मिश्री दूँगा।'' कृष्ण ने तुरन्त अपना मुँह खोल दिया, किन्तु मित्र ने दही-मिश्री डालने की बजाय मुँह में एक फूल डाल दिया। इस फूल को चखकर कृष्ण ने अपना मुँह विचित्र—सा बना लिया। यह देख कर वहाँ खड़े सारे मित्र जोर से हँस पड़े।

एक बार एक ज्योतिषी नन्द महाराज के घर आया तो नन्द महाराज ने उससे पूछा, ''हे मुनि! आप मेरे इस छोटे बच्चे कृष्ण का हाथ देखें। आप मुझे बताएँ कि यह कितने वर्ष जियेगा और यह हजार गौवों का मालिक होगा कि नहीं?'' यह सुनकर ज्योतिषी हँसने लगा। तब नन्द महाराज ने उससे पूछा, ''महोदय! आप हँस क्यों रहे हैं और आपने अपने मुख को क्यों ढक लिया है?''

ऐसे हास्य रस में कृष्ण या कृष्ण सम्बन्धी बातें हँसी का कारण होती हैं। ऐसे हास्य रस से युक्त भक्ति में हर्ष, आलस्य, गोपन तथा ऐसे ही अन्य विक्षुब्धकारी तत्त्व लक्षण स्वरूप होते हैं।

श्री रूप गोस्वामी की गणना के अनुसार हास्य रस के छः विभाग किये जा सकते हैं। ये हँसी की विभिन्न स्थितियों के अनुसार *स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित* तथा *अतिहसित* कहलाते हैं। इन्हें प्रधान तथा गौण के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रधान भेद में स्मित, हसित तथा विहसित आते हैं और गौण भेद में अवहसित, अपहसित तथा अतिहसित।

जब कोई हँसे किन्तु उसके दाँत न दिखें तो उसकी आँखों तथा गालों में निश्चित परिवर्तन देखा जा सकता है। इसे *स्मित* हास कहते हैं। एक बार जब कृष्ण दही चुरा रहे थे तो घर की मालकिन जरती ने उनकी करतूत पकड़ ली, अतएव वह उन्हें पकड़ने तेजी से दौड़ी। उस समय कृष्ण जरती से बहुत डर गये और वे अपने बड़े भाई बलदेव के पास जाकर बोले, "भइया! मैंने दही चुराया है। जरा देखो! जरती मुझे पकड़ने तेजी से आ रही है।" जब कृष्ण इस प्रकार जरती द्वारा पीछा किये जाने पर बलदेव की शरण में पहुँचे तो स्वर्ग लोक के सभी बड़े ऋषिगण हँसने लगे। यह हँसी स्मित हास कहलाती है।

जिस हँसी में दाँत कुछ-कुछ दिखें वह *हसित* कहलाती है। एक दिन राधारानी का तथाकथित पति अभिमन्यु घर लौट रहा था तो उसने यह नहीं देखा कि कृष्ण उसके घर में हैं। अतएव कृष्ण ने तुरन्त अपना वेश बदल लिया जिससे वे अभिमन्यु की तरह लगने लगें। फिर वे अभिमन्यु की माता जटिला के पास जाकर इस प्रकार बोले "हे माता! मैं तुम्हारा असली पुत्र अभिमन्यु हूँ, किन्तु देखो न—कृष्ण मेरे ही समान वेश बनाकर आपके सामने आ रहा है।" जटिला को तुरन्त विश्वास हो गया कि कृष्ण उसी का पुत्र है, अतएव वह अपने घर आए (असली) पुत्र पर अत्यधिक अप्रसन्न हुई। जब वह अपने असली पुत्र को घर से भगाने लगी तो पुत्र चिल्लाने लगा, "माँ! माँ! आप यह क्या कर रही है?" इस घटना को देखकर वहाँ पर उपस्थित राधारानी की सारी सखियाँ हँसने लगीं और इस तरह उनके दाँत कुछ-कुछ दिखने लगे। यह *हसित* हास का उदाहरण है।

जब हँसी में दाँत स्पष्ट दिखें तो वह *विहसित* कहलाती है। एक दिन जब कृष्ण जटिला के घर में मक्खन तथा दही की चोरी कर रहे थे तो उन्होंने अपने मित्रों को

आश्वस्त किया "मित्रो! मुझे पता है कि यह वृद्धा इस समय प्रगाढ़ निद्रा में सो रही है, क्योंकि वह गहरी साँसें ले रही है। चलो, हम लोग बिना किसी उपद्रव के चुपके से मक्खन तथा दही चुरा लें।" किन्तु वह वृद्धा जटिला सोई नहीं थी; अतएव वह अपनी हँसी रोक नहीं पाई और उसके दाँत झट से स्पष्ट दिखने लगे। यह *विहसित* हास्य का उदाहरण है।

जब नाक फूल जाय और आँखें तिरछी हो जायँ (कटाक्ष) तो हँसी की इस दशा को *अवहसित* कहते हैं। एक बार बड़े तड़के जब कृष्ण अपना रास नृत्य समाप्त करके घर लौटे तो माता यशोदा उनके मुख को देख कर कहने लगीं, "बेटे! तुम्हारी आँखें अंजन लगीं-सी क्यों लग रही हैं? क्या तुमने बलदेव के नीले वस्त्र पहन रखे हैं?" जब माता यशोदा कृष्ण को इस प्रकार पुकार रही थीं तो पास ही खड़ी एक सखी नाक फुलाकर तथा आँखें तिरछी करके हँसने लगी। यह अवहसित हँसी का उदाहरण है। गोपी जानती थी कि कृष्ण तो रास नृत्य का आनन्द ले रहे थे और माता यशोदा अपने पुत्र की करतूत को नहीं पकड़ पाईं अथवा वे यह नहीं जान पाईं कि वे गोपियों के वेश से कैसे ढक गए। उसकी हँसी अवहसित मुद्रा में थी।

जिस हँसी के समय आँखों में आँसू आ जायँ और कंधे हिलने लगें उसे *अपहसित* कहते हैं। जब बालक कृष्ण वृद्धा धाय जरती के गाने पर नाच रहे थे तो नारद को आश्चर्य हुआ कि जो भगवान् ब्रह्मा जैसे बड़े-बड़े देवताओं की समस्त गतिविधियों का नियन्त्रण करते हैं वे एक वृद्धा धाय के इशारे पर नाच रहे हैं। इस दृश्य को देखकर नारद भी नाचने लगे और उनके कंधे हिलने लगे तथा आँखें मटकने लगीं। उनके हँसने से उनके दाँत दिखाई पड़ने लगे और उनके दाँतों के ज्वलित तेज से आकाश के बादल चाँदी जैसे हो गये।

जब हँसने वाला व्यक्ति ताली बजाता है और हवा में उछलता है तो उसकी हास्य मुद्रा *अतिहसित* में परिणत हो जाती है। *अतिहसित* का उदाहरण निम्नलिखित घटना में प्रकट हुआ। कृष्ण ने एक बार जरती से कहा, "हे भद्रे! अब तुम्हारे मुँह में झुर्रियाँ पड़ गई हैं, अतएव तुम्हारा मुँह बन्दर जैसा लग रहा है। फलतः वानरराज बालीमुख ने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में चुना है।" जब कृष्ण जरती को इस प्रकार तंग कर रहे थे तो उसने उत्तर दिया कि "हाँ! मुझे पता है कि वानरराज मुझसे ब्याह करने जा रहा है, किन्तु मैंने तो अनेक असुरों के वध करने वाले कृष्ण की शरण ले रखी है; अतएव मैंने वानरराज से नहीं, अपितु कृष्ण के साथ विवाह करने का निश्चय किया

है।'' बातूनी जरती के इस व्यंग्यपूर्ण उत्तर को सुनकर वहाँ पर उपस्थित सारी ग्वालबालाएँ जोर-जोर से हँस कर ताली बजाने लगीं। वह अट्टहास जिसके साथ-साथ ताली बजे अतिहसित कहलाता है।

कभी-कभी अप्रत्यक्ष व्यंग्यपूर्ण वाक्य होते हैं जिनसे भी अतिहसित की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह का व्यंग्य जटिला की पुत्री एवं राधारानी के तथाकथित पति अभिमन्यु की बहन कुटिला के प्रति एक गोपबाला ने किया। अप्रत्यक्ष रूप से इस कथन से कुटिला का अपमान हुआ, ''हे कुटिला! हे जटिलापुत्री! तुम्हारे स्तन फरासबीन के समान हैं—शुष्क तथा लम्बे। तुम्हारी नाक मेंढकी के नाक की सुन्दरता को भी मात देती है और तुम्हारी आँखें कुतिया की आँखों को लजाने वाली हैं। तुम्हारे होठ जलते कोयले को लज्जित करने वाले हैं और तुम्हारा पेट मृदंग जैसा सुन्दर है। हे सुन्दरी कुटिले! तुम वृन्दावन की समस्त गोपबालाओं से अधिक सुन्दर हो, अतएव मेरे विचार में तुम्हें अपनी अद्वितीय सुन्दरता के कारण कृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि के आकर्षण से परे रहना चाहिए।''

अध्याय छियालीस

अद्‌भुत तथा वीर भक्तिरस

अद्‌भुत भक्तिरस

अद्‌भुत भक्तिरस का अनुभव दो प्रकार से किया जाता है—प्रत्यक्ष रूप से या अपनी आँखों से देखकर तथा परोक्ष रूप से या अन्यों से सुन कर।

जब नारद जी भगवान् के कार्यकलापों को देखने द्वारका गये और वहाँ देखा कि कृष्ण उसी शरीर से हर महल में विद्यमान हैं और विभिन्न कार्यों में लगे हैं तो उन्हें आश्चर्य हुआ। यह साक्षात् अद्‌भुत रस का उदाहरण है। माता यशोदा की एक सखी ने कहा, ''यशोदे! जरा इस कौतुक को तो देखो। कहाँ तुम्हारे स्तनों का दुग्धपान करने के लिए मुग्ध रहने वाला तुम्हारा छोकड़ा, कहाँ यह विशाल गोवर्धन पर्वत जो बादलों के मार्ग को भी रोक लेता है! फिर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि यह विशाल गोवर्धन पर्वत तुम्हारे छोकड़े के बाएँ हाथ की अँगुली पर इस तरह टिका है मानो खिलौना हो। क्या यह अत्यन्त आश्चर्यजनक नहीं है?'' यह प्रत्यक्ष अद्‌भुत भक्तिरस का अन्य उदाहरण है।

अप्रत्यक्ष अद्‌भुत भक्तिरस का उदाहरण तब मिला जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी के मुख से कृष्ण द्वारा नरकासुर का वध सुना जो ग्यारह अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्ण से युद्ध कर रहा था। प्रत्येक अक्षौहिणी सेना में कई हजार हाथी, कई हजार घोड़े तथा रथ और लाखों पैदल सिपाही रहते थे। नरकासुर के पास ऐसी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ थीं और वे सभी कृष्ण पर बाण-वर्षा कर रही थीं, किन्तु कृष्ण ने अकेले तीन बाणों द्वारा उनका संहार कर डला। जब महाराज परीक्षित ने यह अद्‌भुत विजय सुनी तो उन्होंने तुरन्त अपने आँसू पोछ डाले और वे हर्ष से भर गये। यह श्रवण द्वारा अनुभव किया जाने वाला परोक्ष अद्‌भुतरस है।

परोक्ष आश्चर्य का एक अन्य उदाहरण देखें। ब्रह्माजी ने यह परीक्षा लेने के लिए कि कृष्ण सचमुच भगवान् हैं उनके सभी ग्वालबालों तथा गौवों को चुरा लिया। किन्तु कुछ क्षणों के बाद उन्होंने देखा कि कृष्ण पहले की ही तरह सारी गायों, बछड़ों

तथा ग्वालबालों के साथ उपस्थित हैं। जब ब्रह्माजी ने यह घटना सत्यलोक में स्थित अपने पार्षदों को सुनाई तो वे सभी चकित रह गये। ब्रह्माजी ने बतलाया कि सारे ग्वालबालों को ले जाने के बाद भी उन्होंने कृष्ण को उन्हीं बालकों के साथ उसी तरह खेलते देखा। उनके शरीरों का रंग कृष्ण जैसा ही श्याम था और सबों के चार हाथ थे। वही गौवें थीं और पहले की तरह वही बछड़े थे। इस घटना का बखान करते समय भी ब्रह्माजी गद्‌गद् हो उठे और उन्होंने बतलाया कि सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि अन्य ब्रह्माण्डों के भिन्न-भिन्न ब्रह्मा भी वहाँ पर कृष्ण तथा उनके पार्षदों की पूजा करने आये हुए थे।''

इसी प्रकार जब भाण्डीरवन में अग्निकाण्ड हुआ तो कृष्ण ने अपने मित्रों से जोर से आँख मूँदने को कहा। उन्होंने ऐसा ही किया; फिर जब कृष्ण ने अग्नि बुझा दी तो ग्वालबालों ने आँखें खोलीं और देखा कि संकट हट गया है और उनकी गौवें तथा बछड़े सभी सुरक्षित हैं। कृष्ण ने जिस तरह उन्हें बचाया था, इसी से वे परिस्थिति के आश्चर्य का अनुमान लगा सके। यह परोक्ष अनुभूति द्वारा अद्‌भुत भक्तिरस का दूसरा उदाहरण है।

किसी व्यक्ति के कार्यकलाप, भले ही वे असाधारण न हों, उस व्यक्ति के मित्र के मन तथा हृदय में आश्चर्य की छाप छोड़ते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति के अत्यन्त अद्‌भुत कार्य भी उस व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ते जो उसका मित्र न हो। यह तो प्रेम है जिसके कारण मन में किसी के अद्‌भुत कार्यों की छाप पड़ती है।

वीर भक्तिरस

जब भगवान् के प्रति प्रेम तथा भक्ति के कारण कोई विशिष्ट वीरतापूर्ण उत्साह हो तो सम्पन्न कार्यकलाप वीर भक्तिरस कहलाते हैं। ये वीरतापूर्ण कार्य क्रीड़ायुद्ध, दान, दया, धर्म आदि के कार्यों से प्रकट किए जा सकते हैं। युद्ध में वीरतापूर्ण कार्य करने वाला *युद्ध-वीर*, दान देने वाला *दानवीर*, असाधारण दया दिखाने वाला *दयावीर* तथा धार्मिक अनुष्ठान करने वाला *धर्मवीर* कहलाता है। इन विविध वीरतापूर्ण कार्यों के आलम्बन कृष्ण होते हैं।

जब कोई मित्र अपने वीरतापूर्ण कार्यों से कृष्ण को प्रसन्न करना चाहता है तो वह मित्र युद्ध के लिए चुनौती देता है और कृष्ण विपक्षी बनते हैं या कृष्ण मात्र इस युद्ध के दर्शक बन सकते हैं और उनकी इच्छा से कोई दूसरा मित्र विपक्षी बन सकता

है। एक बार किसी मित्र ने कृष्ण को ललकारा, ''हे माधव! तुम्हें इसका अभिमान है कि कोई तुम्हें हरा नहीं सकता। किन्तु यदि तुम यहाँ से भागो नहीं तो मैं तुम्हें दिखा दूँगा कि मैं तुम्हें हरा सकता हूँ। यह देखकर मेरे मित्र परम प्रसन्न होंगे।''

कृष्ण और श्रीदामा अत्यन्त घनिष्ठ सखा थे; फिर भी एक बार क्रोध में आकर श्रीदामा ने कृष्ण को ललकार दिया। जब वे दोनों लड़ने लगे तो यमुना के तट पर एकत्र सारे मित्र इस विचित्र द्वन्द्व युद्ध का आनन्द लेने लगे। उन्होंने क्रीड़ा युद्ध के लिए कुछ बाण तैयार किये और कृष्ण उन बाणों को श्रीदामा पर चलाने लगे। श्रीदामा अपनी लाठी घुमाकर इन बाणों को रोकने लगा। कृष्ण श्रीदामा के वीरतापूर्ण कार्य से बहुत सन्तुष्ट हुए। ऐसा क्रीड़ायुद्ध सामान्यतया वीर पुरुषों में होता है और दर्शकों में अद्‌भुत उत्तेजना उत्पन्न करता है।

हरिवंश में उल्लेख आता है कि कभी-कभी कुन्ती की उपस्थिति में अर्जुन तथा कृष्ण लड़ते तो अर्जुन कृष्ण द्वारा पराजित हो जाता।

मित्रों के बीच होने वाले ऐसे वीरतापूर्ण युद्धों में कभी-कभी डींग हाँकना, आत्म-तुष्ट, घमंड, शक्ति, हथियार उठाना, ललकारना तथा विपक्षी बनना जैसे कृत्य होते रहते हैं। ये सारे लक्षण वीर भक्तिरस के उद्दीपन हैं।

एक मित्र ने कृष्ण को इस प्रकार ललकारा, ''हे मित्र दामोदर! तुम खाने में ही पटु हो। तुमने सुबल को इसलिए हरा दिया क्योंकि वह कमजोर है और तुमने धोखाधड़ी की। ऐसी करनी के बल पर अपने को महान योद्धा मत घोषित करो। तुमने अपने को सर्प के रूप में घोषित किया है और मैं वह मोर हूँ जो तुम्हें अब हराएगा।'' मोर सर्प का सबसे सक्षम शत्रु होता है।

मित्रों के बीच होने वाले ऐसे युद्ध में जब आत्मश्लाघा व्यक्तिगत बन जाती है तो विद्वान इसे *अनुभाव* कहते हैं। जब गर्जनायुक्त ललकार, पैतरेबाजी, उत्साह, निरस्त्र रहना तथा डरे हुए दर्शकों को आश्वासन देना जैसी क्रियाएँ हों तो ये सब वीररस के अनुभाव कहलाती हैं।

एक मित्र ने कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित किया, ''हे मधुसूदन! तुम मेरे बल से परिचित हो, तो भी तुम बलशाली बलदेव को ललकारने के लिए मेरी बजाय भद्रसेन को प्रोत्साहित कर रहे हो। इससे तुम मेरा अपमान कर रहे हो, क्योंकि मेरी भुजाएँ द्वार की साँकल के समान बलिष्ठ हैं।''

एक बार एक भक्त ने कहा, ''हे भगवान् कृष्ण! आपको ललकारने वाले श्रीदामा की अपने वीरतापूर्ण कार्यों यथा वज्र के समान गर्जने तथा शेर के समान चिंघारने के लिए जय हो। श्रीदामा के वीरकार्यों के लिए उनकी जय हो।'' युद्ध, दान, दया तथा धर्म के मामले में वीरतापूर्ण कार्य वैधिक कहलाते हैं जबकि गर्व, भाव, धैर्य, कृपा, संकल्प, हर्ष, उत्साह, ईर्ष्या तथा स्मृति अवैधिक कहलाते हैं। जब कृष्ण का एक मित्र स्तोककृष्ण उनसे लड़ रहा था तो उसके पिता ने कृष्ण से लड़ने के लिए उसे डांटा, क्योंकि कृष्ण समस्त वृन्दावनवासियों के प्राणतुल्य थे। इस प्रताड़ना को सुनने पर स्तोककृष्ण ने लड़ना बन्द कर दिया, लेकिन कृष्ण उसे ललकारते रहे। इस ललकार का उत्तर देने के लिए स्तोककृष्ण ने अपनी लाठी उठाई और उसे घुमा कर अपनी निपुणता का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया।

एक बार श्रीदामा ने भद्रसेन को ललकारते हुए कहा, ''हे मित्र! तुम अभी से मुझसे मत डरो। पहले तो मैं भाई बलराम को हराऊँगा, फिर कृष्ण को और तब तुम्हारी बारी आयेगी।'' इसलिए भद्रसेन ने बलराम की मंडली छोड़ दी और कृष्ण से जा मिला। फिर उसने अपने मित्रों को उसी तरह उत्तेजित किया जिस प्रकार मन्दराचल ने सारे समुद्र को खलबला दिया था। अपनी गर्जना से उसने अपने मित्रों को बहरा बना दिया और अपने वीरतापूर्ण कार्यों से कृष्ण को उत्साहित किया।

एक बार कृष्ण ने अपने सारे मित्रों को ललकार कर कहा, ''मित्रो! देखना, मैं अतीव बहादुरी के साथ कूद रहा हूँ। तुम लोग भाग मत जाना।'' इस ललकार को सुनकर वरूथप नामक मित्र ने प्रत्युत्तर में ललकारा और उनसे युद्ध किया।

एक बार एक मित्र ने कहा, ''सुदामा चाहता है कि दामोदर हार जाय। मैं सोचता हूँ कि यदि कहीं हमारा बलशाली सुबल उनके साथ हो ले तो बड़ी अच्छी जोड़ी हो जाय, सोने में सोहागा हो जाय।''

इन वीरतापूर्ण कार्यों में कृष्ण के मित्र ही विपक्षी हो सकते हैं। कृष्ण के शत्रु वास्तव में कभी भी उनके विपक्षी नहीं हो सकते। इसलिए कृष्ण के मित्रों द्वारा इस प्रकार ललकारा जाना वीर भक्तिरस कहलाता है।

दानवीर दो तरह के हो सकते हैं—उदार तथा त्यागी। जो व्यक्ति कृष्ण की तुष्टि के लिए सर्वत्र न्यौछावर कर दे वह उदार कहलाता है। जब कृष्ण को देखकर किसी व्यक्ति में त्याग करने की भावना आती है तो कृष्ण उस उदार कार्य के उद्दीपन कहलाते

हैं। जब कृष्ण नन्द महाराज के पुत्र-रूप में प्रकट हुए तो नन्द ने शुद्ध चित्त से अपने पुत्र की कल्याण-कामना की और सारे ब्राह्मणों को बहुमूल्य गौवों का दान देना आरम्भ कर दिया। वे ब्राह्मण इस दानकर्म से इतने संतुष्ट हुए कि उन्होंने यह कहा कि नन्द महाराज का यह दान महाराज पृथु तथा नृग जैसे पूर्ववर्ती राजाओं से भी उत्कृष्ट हो गया।

जब कोई व्यक्ति भगवान् की महिमाओं को भलीभाँति जानता है और भगवान् के लिए सर्वस्व अर्पित करने को उद्यत रहता है तो वह *सम्प्रदानक* अर्थात् कृष्ण के हेतु सर्वस्व दान देने वाला कहलाता है।

जब महाराज युधिष्ठिर कृष्ण के साथ राजसूय यज्ञ की शाला में गये तो वे मन ही मन कृष्ण के शरीर में चन्दन का लेप करने और उनके गले में घुटनों तक लटकने वाली माला पहनाने लगे। वे सोने की किनारी वाले वस्त्र तथा बहुमूल्य रत्नों से जटित आभूषण कृष्ण को देने लगे और उन्होंने उन्हें पूर्ण-सज्जित हाथी, रथ तथा घोड़े भी दिये। इसी तरह वे दान में कृष्ण को अपना राज्य, परिवार तथा अपने आपको भी देना चाहते थे। और ऐसा चाहने के पश्चाच् जब दान देने के लिए कुछ न रहा तो महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त उद्विग्न और आतुर हो उठे।

इसी प्रकार एक बार महाराज बलि ने अपने पुरोहित शुक्राचार्य से कहा, ''हे मुनि! आप वेदों के ज्ञान में पारंगत हैं; अतएव आप भगवान् विष्णु की पूजा वैदिक विधि से करते हैं। जहाँ तक इस बौने ब्राह्मण (वामनदेव) का सम्बन्ध है, यदि यह भगवान् विष्णु या साधारण ब्राह्मण या मेरा शत्रु भी हो, तो भी मैंने निश्चय कर लिया है कि दान में इसके द्वारा माँगी गई सारी भूमि दे दूँगा।'' महाराज बलि इतने भाग्यशाली थे कि भगवान् ने उनके समक्ष अपना वह हाथ फैलाया जो लाल कुंकुम चूर्ण से लेपित लक्ष्मी जी के स्तनों का स्पर्श करने के कारण रक्तिम था। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् इतने महान् हैं कि लक्ष्मी जी सदैव उनके द्वारा भोग्या है तो भी उन्होंने महाराज बलि से दान लेने के लिए अपना हाथ पसारा।

जो व्यक्ति दान में कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पित करना चाहता है किन्तु बदले में कुछ नहीं चाहता वह असली त्यागी माना जाता है। अतएव भक्त किसी प्रकार की भी मुक्ति को अस्वीकार कर देगा चाहे भगवान् ही क्यों न प्रदान कर रहे हों। असली कृष्ण प्रेम तभी प्रकट होता है जब कृष्ण दान लेने वाले हों और भक्त देने वाला हो।

हरि-भक्ति-सुधोदय में एक अन्य उदाहरण मिलता है जो महाराज ध्रुव के द्वारा अग्रसारित है। वे कहते हैं, "हे प्रभु! मैंने तपस्या की हैं, क्योंकि मै आपसे कुछ प्राप्त करना चाहता था किन्तु इसके बदले में आपने मुझे अपने दर्शन दिये हैं जो बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों के लिए भी दृष्टिगोचर नहीं होते। मैं तो कुछ काँच के टुकड़े खोज रहा था किन्तु इन के बदले मुझे बहुमूल्य रत्न मिल गया है। अतएव मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं माँगना है।"

ऐसा ही कथन *श्रीमद्भागवत* में (३.१५.४८) प्राप्त होता है। सनकादि चारों मुनियों ने भगवान् से कहा, "हे भगवान् आपका यश अत्यन्त आकर्षक एवं समस्त भौतिक कल्मष से रहित है। इसलिए आप कीर्तनीय हैं और सम्पूर्ण तीर्थों के आगार हैं। ऐसे पुण्य व्यक्ति, जिन्हें आपके गुणों के गान में व्यस्त रहने का सौभाग्य प्राप्त है और जो वास्तविक रूप में आपकी दिव्य स्थिति को जानते है, आपके द्वारा प्रदत्त मुक्ति स्वीकार करने की तनिक भी परवाह नहीं करते। उन्हें ऐसी दिव्य निधि मिल जाती है कि वे स्वर्ग के राजा इन्द्र के पद को भी स्वीकार नहीं करते। वे जानते हैं कि इन्द्र का पद भी भयावह है जबकि आपके दिव्य गुणों का गान करने वालों के लिए हर्ष ही हर्ष रहता है और वे सारे संकट से मुक्त रहते हैं। अतएव इस ज्ञान से युक्त व्यक्ति भला स्वर्ग के पद से आकृष्ट क्यों हों?"

एक भक्त ने राजा मयूरध्वज द्वारा प्रदर्शित दान के विषय में अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं, "जिन महाराज मयूरध्वज के कार्यकलापों के वर्णन करने तक में मेरी वाणी रुद्ध हो रही है, उन्हें मैं सादर नमस्कार करता हूँ।" मयूरध्वज अत्यन्त बुद्धिमान थे और वे समझ गये थे कि ब्राह्मण-वेश में कृष्ण एक बार उनके पास क्यों गए थे। कृष्ण ने उनका आधा शरीर माँगा और कहा इसे उनकी पत्नी तथा पुत्र आरे से चीरें। और महाराज मयूरध्वज ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। महाराज मयूरध्वज अपनी तीव्र भक्ति-भावना के कारण निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करते थे और जब वे जान गये कि ब्राह्मण-वेश में कृष्ण आये हैं तो उन्होंने अपना आधा शरीर देने में तनिक भी हिचक नहीं की। कृष्ण के निमित्त महाराज मयूरध्वज का यह त्याग विश्व में अद्वितीय है और हमें उनको सादर नमस्कार करना चाहिए। उन्हें ब्राह्मण-वेशधारी भगवान् का पूर्ण ज्ञान था और वे पूर्ण दानवीर कहलाते हैं।

जो व्यक्ति सदैव कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए सन्नद्ध रहता है और भक्ति को पटुतापूर्वक सम्पन्न करता है वह *धर्मवीर* कहलाता है। धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न

करने वाले उच्च भक्त ही धर्मवीर अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं। प्रामाणिक शास्त्रों को पढ़ने के बाद, नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने के बाद, आज्ञाकारी, सहिष्णु तथा संयमी बनने के बाद ही व्यक्ति धर्मवीर बनते हैं। जो लोग कृष्ण की तुष्टि के लिए धार्मिक अनुष्ठान करते हैं वे भक्ति में स्थिर होते हैं, किन्तु जो लोग कृष्ण को तुष्ट करने की इच्छा के बिना धार्मिक अनुष्ठान करते हैं वे केवल पुण्यात्मा कहलाते हैं।

धर्मवीर के सर्वोत्तम उदाहरण महाराज युधिष्ठिर हैं। एक बार एक भक्त ने कृष्ण से कहा, "हे कृष्ण! हे असुरों के विनाशक! महाराज पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र महाराज युधिष्ठिर ने आपको प्रसन्न करने के लिए सारे यज्ञ सम्पन्न किये हैं। उन्होंने यज्ञों में भाग लेने के लिए सदैव स्वर्ग के राजा इन्द्र को बुलाया है। इस तरह इन्द्र प्रायः शचीदेवी से दूर ही रहते हैं जिससे शचीदेवी को अपना अधिकांश समय इन्द्र की अनुपस्थिति की चिन्ता में अपने गालों पर हाथ रखे बिताना पड़ता है।"

देवताओं के लिए विभिन्न यज्ञों का सम्पन्न किया जाना परमेश्वर के अंगों की पूजा समझा जाता है। देवतागण भगवान् के विश्वशरीर के विभिन्न अंग माने जाते हैं; अतएव उनकी पूजा करने का चरम उद्देश्य उनके विभिन्न अंगों की आंशिक पूजा द्वारा उन्हें प्रसन्न करना है। महाराज युधिष्ठिर को ऐसी कोई भौतिक इच्छा न थी। उन्होंने कृष्ण के निर्देशन में ही सारे यज्ञ सम्पन्न किये; उन्हें उन यज्ञों से कोई व्यक्तिगत लाभ की इच्छा नहीं थी। वे केवल कृष्ण को प्रसन्न करना चाहते थे; अतएव उन्हें सर्वोत्तम भक्त कहा गया है। वे सदैव प्रेमा-भक्ति के सागर में तल्लीन रहते थे।

अध्याय सैंतालीस

करुण भक्तिरस तथा रौद्र भक्तिरस

करुण भक्तिरस

जब भक्तिभाव से कृष्ण के विषय में किसी प्रकार का शोक उत्पन्न होता है तो इसे करुण भक्तिरस कहते हैं। इस भक्ति के उद्दीपन हैं—कृष्ण के दिव्य गुण, रूप तथा कार्यकलाप। इस भक्ति भाव में कभी-कभी शोक, उच्छ्वास, विलाप, भूमि पर गिरना तथा छाती पीटना जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। कभी-कभी आलस्य, निराशा, अपयश, दैन्य, चिन्ता, विषाद, उत्सुकता, चपलता, उन्माद, मृत्यु, विस्मृति, व्याधि तथा मोह के लक्षण भी देखे जाते हैं। जब भक्त अपने हृदय में कृष्ण के बारे में कोई संकट की सम्भावना देखता है तो उसे शोक भक्तिरस कहते हैं। ऐसा शोक इस करुण भक्तिरस का अन्य लक्षण है।

श्रीमद्भागवत में (१०.१६.१०) निम्नलिखित विवरण मिलता है—जब कृष्ण यमुना में कालियनाग को दण्ड दे रहे थे तो उस विशाल नाग ने कृष्ण के सम्पूर्ण शरीर को अपनी कुंडली में लपेट लिया। कृष्ण को इस स्थिति में देखकर उनके सारे ग्वालबाल सखा अत्यधिक व्यग्र हो उठे। वे शोक, दुख तथा भय के कारण मोहग्रस्त हो गये और भूमि पर गिरने लगे। चूँकि सारे ग्वालबाल इस भ्रम में थे कि कृष्ण किसी विपत्ति से ग्रस्त लगते हैं इसलिए उनके लक्षणों से कोई आश्चर्य नहीं व्यक्त होता था। उन्होंने अपनी मित्रता, अपनी सम्पत्ति, अपनी इच्छाएँ तथा अपने आपको कृष्ण को समर्पित कर दिया था।

जब कृष्ण यमुना नदी में प्रविष्ट हुए, जो कालिय नाग के रहने से अत्यन्त विषाक्त हो उठी थी तो माता यशोदा को सभी प्रकार की दुश्चिन्ताएँ होने लगीं और उनकी साँस गरम हो उठी। उनके आँसुओं से उनके वस्त्र भीगने लगे और वे प्रायः मूर्छित होने लगीं।

इसी प्रकार जब शंखासुर कृष्ण की रानियों पर एक-एक करके आक्रमण कर रहा था तो बलदेवजी और अधिक नीले पड़ते गये।

हंसदूत में निम्नलिखित घटना वर्णित है—गोपियों ने हंसदूत से अनुनय-विनय की कि वह कृष्ण के चरणचिह्नों की खोज करे और उन्हें उसी तरह स्वीकार करे जिस तरह ब्रह्माजी ने कृष्ण के ग्वाल-बालों को चुराने के बाद उन्होंने अपने मुकुट पर धारण किया था। ब्रह्माजी ने कृष्ण को दी गई चुनौती पर खेद व्यक्त करते हुए भगवान् को झुककर नमस्कार किया और उनका मुकुट कृष्ण के चरणचिह्नों से अंकित हो गया। गोपियों ने हंसदूत को याद दिलाई कि कभी-कभी नारद मुनि तक इन चरणचिह्नों को देखकर भावविभोर हो जाते हैं और कभी-कभी मुक्तात्मा मुनि भी उन के दर्शनों की कामना करते हैं। इसलिए गोपियों ने निवेदन किया, "तुम्हें उत्साहपूर्वक कृष्ण के चरणचिह्नों की खोज करनी चाहिए।" यह करुण भक्ति-रस का अन्य उदाहरण है।

एक बार नकुल के छोटे भाई सहदेव कृष्ण के चरणचिह्नों की तेजोमय दीप्ति देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे चिल्लाने लगे और पुकार उठे, "माता माद्री! तुम कहाँ हो? पिता पाण्डु! आप कहाँ हैं? मुझे खेद है कि आप कृष्ण के इन चरणचिह्नों को देखने के लिए यहाँ नहीं हैं।" यह करुण भक्तिरस का एक और उदाहरण है।

भगवान् के प्रति प्रबल आकर्षण के न होने पर हँसना तथा अन्य लक्षण तो प्रकट हो सकते हैं, किन्तु मनस्ताप या शोक कभी नहीं प्रकट होता जो कि करुण भक्तिरस का लक्षण है। इस करुणा का मूल सिद्धान्त हमेशा प्रेम होता है। कृष्ण या उनकी रानियों के लिए बलदेव तथा युधिष्ठिर द्वारा प्रकट की गई भावी दुखानुभवों की आशंका का वर्णन पहले हो चुका है। यह भावी दुखानुभव कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के प्रति उनके अज्ञान के कारण नहीं, अपितु उनके प्रति उत्कट प्रेम के कारण है। कृष्ण के प्रति इस प्रकार का भावी संकट पहले शोक के आलम्बन रूप में प्रकट होता है, किन्तु यही धीरे-धीरे करुण भक्तिरस में परिणत हो जाता है और यह दिव्य आनन्द प्रदान करने वाला बन जाता है।

रौद्र भक्तिरस (क्रोध)

रौद्र भक्तिरस में कृष्ण सदैव आलम्बन होते हैं। *विदग्ध-माधव* (२.३७) में ललिता नामक गोपी ने श्रीमती राधारानी को सम्बोधित करते हुए जो क्रोध व्यक्त किया वह कृष्ण द्वारा जनित था, "हे सखी! मेरी आन्तरिक इच्छाएँ दूषित हो चुकी हैं; अतएव मैं यमराज के पास जाऊँगी। किन्तु मुझे यह देखकर दुख होता है कि कृष्ण ने तुम्हारे ठगे जाने पर अपनी हँसी अभी तक बन्द नहीं की है। मेरी समझ में नहीं

आ रहा कि तुमने ग्वालों के पड़ोसी इस कामुक नवयुवक को अपनी प्रेम की सम्पदा कैसे सौंप दी?"

कभी-कभी कृष्ण को देख कर जरती कहती, "अरे तरुणियों की सम्पत्ति के लुटेरे! मैं अपनी पुत्रवधू की ओढ़नी तुम्हारे पास देख रही हूँ।" फिर वह वृन्दावन के सारे वासियों को यह बताने के लिए कि इस नन्द के छोकरे ने उसकी पुत्रवधू के गृहस्थजीवन को किस तरह आग लगाई है, जोर से चिल्लाने लगी।

इसी प्रकार का कृष्ण के प्रति करुणामय प्रेम रोहिणीदेवी ने व्यक्त किया जब उसे यमलार्जुन वृक्षों जिनसे कृष्ण को बाँधा गया था, के गिरने की गर्जना सुनाई पड़ी। सारा पड़ोस उस स्थान की ओर तुरन्त चल पड़ा जहाँ यह दुर्घटना घटी थी और रोहिणीदेवी ने इस अवसर पर माता यशोदा को इस प्रकार फटकारा, "भले ही तुम अपने पुत्र को रस्सी से बाँध कर उसे पाठ पढ़ाना चाह रही हो, किन्तु क्या तुम्हें यह नहीं दिखा कि तुम्हारा पुत्र खतरनाक स्थान में है? वृक्ष पृथ्वी पर गिर रहे हैं और वह वहाँ पर मटरगश्ती कर रहा है।" यशोदा के प्रति रोहिणीदेवी का यह क्रोध श्रीकृष्ण के द्वारा उत्पन्न रौद्र भक्तिरस का उदाहरण है।

एक बार कृष्ण अपने ग्वालमित्रों के साथ चरागाह में गौवें चरा रहे थे तो उनके मित्रों ने तालवन चलने के लिए याचना की, जहाँ गधे के रूप में उपद्रवी असुर गर्दभासुर रहता था। कृष्ण के मित्र उस जंगल के वृक्षों के मधुर फल खाना चाह रहे थे, किन्तु वे उस असुर के भय से वहाँ नहीं जा रहे थे। फलतः उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे वहाँ चल कर गर्दभासुर का वध करें। जब कृष्ण ने वध कर दिया तो वे सब मित्र घर लौट आये। उस दिन की घटना की सूचना से माता यशोदा व्यग्र हो उठीं, क्योंकि कृष्ण को तालवन के इतने संकट में अकेले ले जाया गया था। इस तरह वे उन बालकों से रुष्ट थीं।

राधारानी की एक सखी के क्रोध का भी एक उदाहरण प्राप्त होता है। जब राधारानी ने कृष्ण के व्यवहार से रुष्ट होकर उनसे बोलना बन्द कर दिया था तो कृष्ण जी राधारानी के इस घोर असन्तोष के लिए अत्यधिक खिन्न थे। फलतः क्षमा माँगने के लिए वे राधारानी के चरणकमलों पर गिर पड़े। किन्तु इस पर भी राधारानी तुष्ट नहीं हुईं और वे कृष्ण से नहीं बोलीं। उस समय उनकी एक सखी ने उन्हें इस प्रकार फटकारा, "हे सखी! तुम असन्तोष रूपी मथानी से अपने को मथ रही हो; अतएव मैं तुमसे क्या कहूँ? मैं तुम्हें इतनी ही सलाह दे सकती हूँ कि तुम इस स्थान से तुरन्त

चली जाओ, क्योंकि तुम्हारे दुर्व्यवहार से मुझे अत्यधिक पीड़ा हो रही है। मैं तुम्हारे इस दुर्व्यवहार को अब देख नहीं सकती, क्योंकि यद्यपि कृष्ण का मोर मुकुट तुम्हारे पाँवों का स्पर्श कर चुका है फिर भी तुम क्रोध से मुँह लाल किये हो।'' उपर्युक्त प्रकार से भक्तिरस में असन्तोष तथा क्रोध की मुद्राएँ बनाना *ईर्ष्या* कहलाता है।

जब अक्रूर वृन्दावन से जा रहे थे तो कुछ सयानी गोपियाँ ने उन्हें इस प्रकार उलाहना दिया, ''हे गान्दिनीपुत्र! तुम्हारी क्रूरता यदुकुल को कलंकित कर रही है। तुम कृष्ण को लिये जा रहे हो और उनके बिना हमें इस दयनीय दशा में छोड़े जा रहे हो। तुम्हारे जाने के पूर्व ही सारी गोपियों के प्राण लगभग निकल चुके हैं।''

जब महाराज युधिष्ठिर द्वारा सम्पन्न राजसूय यज्ञ की सभा में शिशुपाल द्वारा कृष्ण अपमानित हुए थे तो पाण्डवों तथा भीष्म पितामह समेत कौरवों में काफी उथल-पुथल होने लगी। उस समय नकुल ने अत्यन्त क्रोध में आकर कहा, ''कृष्ण भगवान् हैं और उनके चरण के अँगूठे वेदों के विद्वानों के रत्नजटित मुकुटों से निकलने वाले प्रकाश से सुशोभित हैं। यदि कोई उनका उपहास करेगा तो मैं पाण्डव के रूप में घोषित करता हूँ कि मैं उसके मुकुट पर बाएँ पाँव से प्रहार करूँगा और उसे अपने यमदण्ड सदृश बाणों से बींध दूँगा।'' यह कृष्ण के प्रेम में क्रोध का उदाहरण है।

इस प्रकार के दिव्य रौद्र रस में कभी-कभी व्यंग्य वचन, वक्रदृष्टि तथा अनादर देखा जाता है। कभी-कभी कुछ अन्य लक्षण भी देखे जाते हैं, यथा दोनों हाथों को मलना, दाँत किटकिटाना, होंठ काटना, भौंहें चढ़ाना, बाहें खुजलाना, सिर नीचा करना, तेज साँस लेना, कड़े शब्द कहना, सिर हिलाना, आँखों की कोरों का पीला पड़ना तथा होंठों का फड़कना। कभी-कभी आँखें लाल पड़ जाती हैं तो कभी म्लान पड़ जाती हैं। कभी प्रताड़ना होती है तो कभी चुप्पी। क्रोध के इन सारे लक्षणों के दो भाग किये जा सकते हैं—वैधानिक तथा अवैधानिक अथवा स्थायी और अस्थायी। कभी-कभी आवेश, मोह, गर्व, निराशा, भ्रम, क्लीवता, ईर्ष्या, पटुता, उपेक्षा तथा कठिन श्रम के लक्षण अवैधानिक भाव होते हैं। इन सभी भावों में क्रोध की अनुभूति को स्थायी भाव माना गया है।

जब जरासन्ध ने क्रुद्ध होकर मथुरापुरी पर आक्रमण कर दिया तो उसने कृष्ण को व्यंग्यपूर्ण नजरों से देखा। उस समय बलदेव ने अपना हल उठाया और जरासन्ध को अपनी लाल-पीली आँखें दिखलाईं।

विदग्ध-माधव में प्रसंग आता है कि जब राधारानी की माता पौर्णमासी ने श्रीमती राधारानी पर आरोप लगाया कि वह कृष्ण के पास जाती है तो इस पर क्रुद्ध होकर राधारानी पौर्णमासी से बोलीं, ''हे माता! मैं आपसे क्या कहूँ? कृष्ण इतना क्रूर है कि वह प्रायः गली में मुझ पर प्रहार करता है और यदि मैं जोर से चिल्लाना चाहती हूँ तो यह मोरपंखधारी बालक तुरन्त मेरा मुँह बंद कर देता है जिससे मैं रो न पाऊँ। यदि मैं डर कर उस स्थान से भागना चाहती हूँ तो वह तुरन्त बाँहें फैलाकर मेरा रास्ता रोक लेता है। यदि मैं दीन-भाव में उसके पाँवों पर गिर कर गिड़गिड़ाती हूँ तो मधु असुर का यह शत्रु क्रुद्ध होकर मुझे मुख पर काटने लगता है। माता! जरा मेरी स्थिति को समझने की कोशिश तो करो। मेरे ऊपर व्यर्थ ही क्रुद्ध मत होओ। प्रत्युत मुझे बतलाओ कि मैं कृष्ण के इन भयंकर हमलों से अपने को कैसे बचाऊँ?''

कभी-कभी समानधर्मी व्यक्तियों में कृष्ण प्रेम के कारण रौद्र रस के लक्षण दिखते हैं। जटिला तथा मुखरा के बीच होने वाले झगड़े में ऐसे ही क्रोध का उदाहरण मिलता है। जटिला राधारानी की सास थीं और मुखरा उसकी पड़नानी थीं। दोनों ही कृष्ण द्वारा राधारानी को गली में व्यर्थ तंग किये जाने के विषय में बातें कर रही थीं। जटिला ने कहा, ''अरी दुर्मुख मुखरे! तुम्हारे शब्दों को सुनकर मेरे हृदय में आग सी लग रही है।'' मुखरा ने उत्तर दिया, ''अरी पापिन जटिले! तुम्हारी बातें सुन-सुन कर मेरा सिर दर्द करने लगा है। तुम्हारे पास इसका सबूत नहीं है कि मेरी नातिन कीर्तिदा की पुत्री राधारानी पर कृष्ण ने हमला किया है।''

एक बार जब राधारानी कृष्ण द्वारा दिये गये हार को उतार रही थीं तो उनकी सास जटिला ने अपनी सखी से कहा, ''सखी! यह हार जो तुम देख रही हो इसे कृष्ण ने राधारानी को भेंट किया है। वह इसे लिये हुए है, किन्तु इतने पर भी वह हमें यह बताना चाह रही है कि कृष्ण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।''

शिशुपाल जैसे व्यक्तियों की कृष्ण से स्वाभाविक ईर्ष्या को कृष्ण के साथ रौद्र भक्ति के रूप में रस स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

अध्याय अड़तालीस

भयानक भक्ति-रस तथा वीभत्स भक्ति-रस

भयानक भक्तिरस

कृष्ण के भयानक भक्तिरस में भय के दो कारण (आलम्बन) होते हैं—या तो स्वयं कृष्ण अथवा कृष्ण के लिए कोई भयानक परिस्थिति। जब कोई भक्त अपने को कृष्ण के चरणकमलों पर अपराधी अनुभव करता है तो स्वयं कृष्ण भयानक रस के आलम्बन बन जाते हैं। और जब प्रेमवश कृष्ण के मित्र तथा उनके हितैषी उनके लिए किसी संकट की आशंका करते हैं तो यही परिस्थिति उनके भय का आलम्बन बन जाती है।

जब ऋक्षराज कृष्ण के समक्ष उनसे लड़ रहा था तो सहसा उसे लगा कि ये तो भगवान् हैं। तब कृष्ण ने उसे इस प्रकार सम्बोधित किया, "हे ऋक्षराज! तुम्हारा मुख सूख क्यों गया है? तुम मुझसे भयभीत न होओ। तुम्हारे हृदय को इस तरह काँपने की आवश्यकता नहीं है। अपने को शान्त करो। मैं तुम पर क्रुद्ध नहीं हूँ, किन्तु तुम मुझ पर जितना चाहो उतना क्रोध जता सकते हो—तुम मुझसे युद्ध करते रह कर अपनी सेवा का विस्तार कर सकते हो और मेरे खिलवाड़ को बढ़ा सकते हो।" कृष्ण-भक्तिरस की इस भयावह अवस्था में कृष्ण स्वयं भयानक रस के आलम्बन हैं।

कृष्ण के आलम्बन बनने का एक दूसरा उदाहरण भी है। जब यमुना नदी में कालिय नाग बालक कृष्ण द्वारा अत्यधिक मर्दित हो चुका तो उसने भगवान् से कहा, "हे मुरारि! यद्यपि मैंने तपस्या द्वारा अनेक योग शक्तियाँ प्राप्त की हैं, किन्तु आपके समक्ष वे व्यर्थ हैं। मैं सर्वथा तुच्छ हूँ। अतएव मुझ दीन पर कृपा करें; मुझ पर क्रुद्ध न हों। मैं आपकी वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ था और मैंने अज्ञानवश ही ऐसा भयंकर अपराध किया है। कृपया मुझे बचा लें। मैं सबसे अभागा मूर्ख प्राणी हूँ। मुझ पर कृपा करें।" यह भयानक भक्ति-रस का अन्य उदाहरण है।

जब केशी असुर बहुत बड़े अश्व का रूप धारण करके एक वृक्ष से दूसरे पर कूद-कूद कर वृन्दावन में उत्पात मचा रहा था तो यशोदा जी ने नन्द महाराज से कहा, ''हमारा बेटा बड़ा चंचल है। अच्छा हो कि हम इसे कमरे के भीतर बन्द करके रखें। विशाल घोड़े का रूप धरने वाले केशी असुर द्वारा किये जा रहे हाल ही के उत्पातों से मैं अत्यधिक चिन्तित हूँ।'' जब यह पता चला कि यह असुर क्रुद्ध होकर गोकुल में प्रवेश कर रहा है तो माता यशोदा अपने बालक की रक्षा के लिए इतनी चिन्तित हो उठीं कि उनका मुख सूखने लगा और उनकी आँखों में आँसू आ गये। ये भयानक भक्तिरस के कुछ लक्षण हैं जो कृष्ण के लिए घातक स्थिति के सुनने तथा देखने से उत्पन्न होते हैं।

जब पूतना राक्षसी का वध हो चुका तो माता यशोदा की कुछ सखियाँ इस घटना के विषय में पूछने लगीं। माता यशोदा ने सखियों से तुरन्त निवेदन किया, ''चुप! चुप! पूतनाकाण्ड की बात छेड़ो ही मत। मैं इस घटना को याद करते ही भयभीत हो उठती हूँ। पूतना मेरे बेटे को निगलने आई थी और उसने मुझे धोखा देकर मेरे बेटे को अपनी गोद में ले लिया था। उसके बाद वह मर गई और अपने विशाल शरीर से उसने घोर गर्जना की।''

भयानक भक्तिरस के व्यभिचारी भाव इस प्रकार हैं—मुँह का सूखना, नि:श्वास, मुड़कर पीछे देखना, अपने को छिपाना, मोह, संकट में पड़ी प्रिय वस्तु को ढूँढना और जोर-जोर से चिल्लाना। कुछ अन्य व्यभिचारी भावों में भ्रम, विस्मृति तथा संकट की आशंका आदि आते हैं। ऐसी समस्त परिस्थितियों में भय ही स्थायी भाव होता है। ऐसा भय या तो अपराध करने या भयानक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। अपराध किये जा सकते हैं और जो अपराध करता है उसे कई प्रकार से भय लगता है। जब भय किसी भयानक वस्तु द्वारा जनित होता है तो यह भयानक वस्तु सामान्यतया कोई व्यक्ति होता है जो अपने स्वरूप, प्रकृति तथा प्रभाव के कारण भयानक लगता है। भय उत्पन्न करने वाली ऐसी वस्तु का उदाहरण पूतना राक्षसी है। दुष्ट आसुरी पात्रों यथा कंस द्वारा भी भय उत्पन्न हो सकता है और यह इन्द्र या शंकर जैसे शक्तिशाली देवताओं द्वारा भी उत्पन्न किया जा सकता है।

कंस जैसे असुर कृष्ण से भयभीत रहते थे किन्तु उनके भावों को भयानक भक्ति-रस नहीं कहा जा सकता है।

वीभत्स भक्तिरस

प्रामाणिक सूत्रों से पता चलता है कि जुगुप्सा के कारण कृष्ण के प्रति आसक्ति से वीभत्स रस प्रकट होता है। कृष्ण के प्रति ऐसा प्रेम अनुभव करने वाला व्यक्ति प्राय: *शान्त रस* दशा को प्राप्त हुआ रहता है। वीभत्स भक्तिरस का एक उदाहारण इस प्रकार है, ''यह व्यक्ति पहले पूर्णतया भोगविलास तथा इन्द्रियतृप्ति में रुचि लेता था और इसने अपनी कामवासनाओं की पूर्ति के लिए स्त्रियों को ठगने में निपुणता प्राप्त की थी। किन्तु यह कितना आश्चर्यजनक लगता है कि वही मनुष्य अब अपने नेत्रों में अश्रु भर कर कृष्ण नाम का कीर्तन कर रहा है और ज्यों ही किसी स्त्री के मुख को देखता है तो तुरन्त घृणा करने लगता है। उसकी मुखमुद्रा से मुझे लगता है कि अब वह विषयी जीवन से घृणा करने लगा है।''

वीभत्स भक्तिरस के अनुभावों में अपने पूर्व जीवन के विचार मात्र पर थूकना, मुँह मरोड़ना (बिचकाना), नाक बन्द करना और हाथ धोना सम्मिलित है। इसमें शरीर में कम्पन होना, शरीर को बलात् मरोड़ना तथा पसीना आना भी देखे जाते हैं। अन्य लक्षण हैं—लज्जा, थकान, उन्माद, मोह, निराशा, दैन्य, आत्मग्लानि, चंचलता, उत्सुकता तथा स्तंभ।

जब कोई भक्त अपने पूर्व गर्हित कर्मों पर पश्चाताप करता है और उसके शरीर पर विशिष्ट लक्षण दिखते हैं तो उसके इस भाव को वीभत्स भक्तिरस कहा जाता है। यह उसमें कृष्णभावनामृत के उदय होने से होता है।

इस प्रसंग में यह कथन मिलता है, ''भला कोई व्यक्ति इस शरीर में कामवासना के भोग का आनन्द कैसे उठा सकता है, क्योंकि यह शरीर चमड़ी तथा हड्डियों का थैला है जो रक्त से पूर्ण है और चमड़ी तथा मांस से ढका है तथा जो कफ तथा दुर्गंध उत्पन्न करता है।'' यह अनुभूति उसे ही हो सकती है जिसमें कृष्णभावनामृत जागृत हो चुका है और जो इस भौतिक शरीर की अधम अवस्था से भलीभाँति अवगत हो चुका है।

अपनी माता के गर्भ में स्थित किसी भाग्यवान बालक ने कृष्ण से इस प्रकार प्रार्थना की, ''हे कंसारि! मैं इस भौतिक शरीर के कारण इतने कष्ट सह रहा हूँ। अब मैं अपनी माता के गर्भ में रक्त, मूत्र तथा तरल मल के भीतर फँसा हुआ हूँ। इस स्थिति में रहने के कारण मुझे अत्यधिक कष्ट हो रहा है। अतएव हे दया के सिन्धु! मुझ पर

दयालु हों। आपकी सेवा में संलग्न होने की शक्ति मुझमें नहीं है, किन्तु आप मुझे बचा लें।'' इसी प्रकार का एक कथन नरक में पतित किसी पुरुष का भी है। उसने परमेश्वर को इस प्रकार पुकारा, ''हे प्रभु! यमराज ने मुझे ऐसे स्थान में डाल दिया है जो गंदगी तथा दुर्गंध से पूर्ण है। उसमें न जाने कितने कीड़े-मकोड़े हैं जो विभिन्न प्रकार के रोगग्रस्त व्यक्तियों के त्यागे हुए मल से घिरे हुए हैं। इस भयावह दृश्य को देख कर मेरी आँखें दुखने लगी हैं और मैं अन्धा-जैसा हो रहा हूँ। अतएव हे प्रभु! हे नरक से उद्धारकर्ता! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। यद्यपि मैं इस नरक में आ गिरा हूँ, किन्तु मैं आपके पवित्र नाम को सदैव स्मरण रखूँगा और अपना जीवन यापन इस प्रकार करूँगा।'' यह अधम स्थिति में कृष्ण के प्रति प्रेम का अन्य उदाहरण है।

यहाँ यह समझना होगा कि जो व्यक्ति निरन्तर भगवन्नाम के कीर्तन—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम, हरे हरे—में लगा रहता है, उसने कृष्ण के प्रति दिव्य अनुराग प्राप्त कर लिया है; फलतः वह जीवन की किसी भी परिस्थिति में एकमात्र भगवान् के नाम का स्मरण करके तुष्ट रहता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि वीभत्स भक्ति-रस तब प्रकट होता है जब सुप्त शान्त रस विकसित प्रेम का रूप धारण कर लेता है।

अध्याय उनचास

रसों का मिश्रण (मैत्री-वैर स्थिति)

जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है, कृष्ण सम्बन्धी बारह प्रकार के रस होते हैं। इनमें से पाँच रस मुख्य हैं। ये हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर प्रेम। शेष सात रस गौण हैं और इनके नाम हैं हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स। पाँच प्रमुख रस वैकुण्ठ जगत् में नित्य प्रकट होते हैं जब कि सात गौण रस गोकुल वृन्दावन में नित्य प्रकट तथा अप्रकट होते हैं जहाँ कृष्ण इस भौतिक जगत् में अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं।

प्रायः नियमित रस के अतिरिक्त किसी अन्य रस की भी उपस्थिति पाई जाती है और इन रसों का मिश्रण कभी अनुकूल या आस्वाद्य होता है तो कभी प्रतिकूल या स्वादरहित। इन रसों के मिश्रण की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का वैज्ञानिक विश्लेषण निम्नलिखित है।

जब शान्त रस में वीभत्स या अद्भुत रस का लेशमात्र भी रहता है तो परिणाम अनुकूल (मैत्री) होता है। जब शान्त रस के साथ मधुर रस, वीर रस, रौद्र रस या भयानक रस प्रकट होता है तो परिणाम प्रतिकूल (वैर) होता है।

जब दास्य भक्तिरस में भयानक, शान्त वीररस (यथा धर्मवीर तथा दानवीर) प्रकट होता है तो भी परिणाम अनुकूल (मैत्री) होता है। वीर (युद्धवीर) तथा रौद्ररस की उत्पत्ति साक्षात् कृष्ण द्वारा होती है।

सख्य भाव के साथ मधुर प्रेम, हास्य या वीररस का मिश्रण अत्यधिक अनुकूल होता है किन्तु उसी सख्य प्रेम के साथ भयानक या वात्सल्यरस अत्यन्त प्रतिकूल (वैर) होता है।

वात्सल्य प्रेम के साथ हास्य, करुण या भयानक रस का मिश्रण अनुकूल (मैत्री) होता है, यद्यपि इनमें जमीन आसमान का अन्तर होता है।

वात्सल्यरस के साथ मधुर, वीर या रौद्ररस का मिश्रण प्रतिकूल (वैर) होता है।

मधुर भक्ति-रस के साथ हास्य या सख्य रस का मिश्रण अनुकूल होता है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार, मधुर रस में युद्ध-वीर तथा धर्म-वीर रस ही अनुकूल योग प्रदान करते हैं। इस मत के अनुसार इन दो रसों के अतिरिक्त अन्य सभी अभिव्यक्तियाँ मधुर रस के प्रतिकूल हैं।

हास्य रस के साथ भयानक, मधुर तथा वात्सल्य तीनों ही मैत्री भाव प्रदर्शित करते हैं जब कि करुण या वीभत्स रस वैरी हैं।

अद्भुत रस के साथ वीर या शान्त रस का मिश्रण मित्र होता है जब कि रौद्र या भयानक रस का मिश्रण वैरी है।

वीर भक्ति-रस के साथ अद्भुत, हास्य तथा दास्य की मैत्री होती है जब कि भयानक या मधुर रस वैरी होते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार शान्त रस एवं वीरभक्ति-रस में सदैव मैत्री रहती है।

करुण रस के मित्र रस हैं रौद्र या वात्सल्य रस जब कि हास्य, मधुर या अद्भुत रस उसके वैरी हैं।

रौद्र रस के मित्र करुण या वीर रस हैं जबकि हास्य, मधुर तथा भयानक रस उसके वैरी हैं।

भयानक रस के मित्ररस हैं वीभत्स तथा करुणरस।

वीररस के वैरी रस हैं मधुर रस, हास्य रस तथा रौद्र रस।

वीभत्स रस के मित्ररस हैं शान्त, हास्य तथा दास्यरस जबकि मधुररस तथा सख्यरस वैरी हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण *रसाभास* या रसों के वैर-मिश्रण का नमूना है। रसाभास के इस दिव्य विज्ञान के द्वारा रसों की मैत्री तथा उनके वैर की सम्यक् व्याख्या की जा सकती है। जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी में निवास कर रहे थे तो अनेक कवि तथा भक्त उनके पास आकर कविता सुनाते थे, किन्तु यह नियम बना था कि सर्वप्रथम श्रीचैतन्य महाप्रभु के सचिव स्वरूप दामोदर उन कविताओं की विवेचनात्मक जाँच कर लें और जब वे देखें कि उनमें रसाभास नहीं है तभी वे उस कवि को श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जाकर कविता सुनाने देते थे।

रसाभास का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है और जो शुद्ध भक्त हैं वे भगवान् से सम्बंध विषयक वर्णनों में पूर्ण मैत्री देखने की आशा करते हैं। रसों की मैत्री तथा वैर का अध्ययन कभी-कभी जटिल हो जाता है, अतएव ऐसा क्यों होता है इस बारे में

कुछ संकेत दिये जा रहे हैं। जब एक मित्र दूसरे मित्र से मिलता है तो इस मिलन से उत्पन्न रस सामान्यतया आस्वाद्य होता है। किन्तु वास्तव में दो मित्रों के ऐसे मिलन में न जाने कितनी भावनाएँ निहित रहती हैं कि यह जान पाना कठिन होता है कि ये भाव कब मित्र दशा को और कब शत्रु दशा को प्राप्त होते हैं।

दक्ष साहित्याचार्यों ने मित्र रसों का विश्लेषण एक विशेष मिश्रण में विविध रसों की तुलना करके *अंगी* और *अंग* रसों के रूप में किया है। इस विधि के अनुसार प्रधान भाव *अंगी* कहलाता है और गौण भाव अंग कहलाता है।

निम्नलिखित कथन से अंग तथा अंगी रसों का स्पष्टीकरण हो जाता है "सारे जीव परम अग्नि के स्फुलिंगों के समान हैं; अतएव मैं नहीं जानता कि मुझ जीव-रूपी छोटी सी स्फुलिंग को मैं उस परम अग्नि भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा सकूँगा या नहीं।" इस कथन में शान्त रस को अंगी माना गया है और कृष्ण की सेवा करने को अंग माना गया है। वास्तव में ब्रह्मज्योति में भगवान् तथा भक्त के मध्य प्रेम भाव के आदान-प्रदान के लिए सम्भावना नहीं रहती।

एक अन्य उद्धरण दिया जा रहा है जिसमें एक भक्त शोक व्यक्त करता है, "हाय! मैं इस शरीर से अब भी नाना प्रकार के आनन्द लेने का प्रयास कर रहा हूँ जो कफ, वीर्य तथा रक्त को ढकने वाली चमड़ी मात्र है। इस चेतन अवस्था में मुझे धिक्कार है कि मैं भगवान् के स्मरण के दिव्य भाव का आस्वादन नहीं कर पा रहा।" इस कथन में दो रस हैं—शान्त तथा वीभत्स। इसमें शान्त रस तो अंगी है और वीभत्स अंग है।

इसी प्रकार का एक अन्य कथन एक भक्त का है "अब मैं सोने के सिंहासन पर आसीन भगवान् श्रीकृष्ण को पंखा झलना शुरू करूँगा। वे अपने मेघ जैसे श्याम वर्ण वाले शाशवत दिव्य स्वरूप में परब्रह्म हैं। अब मैं अपने भौतिक शरीर के लिए अपने प्रेम को त्याग दूँगा, जो मांस तथा रक्त के पुंज के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।" यहाँ पर भी दास्य तथा वीभत्स का संयोग है जिसमें दास्य अंगी है और वीभत्स अंग है।

एक और कथन मिलता है जो इस प्रकार है—"मैं रजोगुण से कब छुटकारा पाऊँगा? और इस प्रकार शुद्ध होने पर, मैं कब कृष्ण की नित्य सेवा में रत होने के पद को प्राप्त करूँगा? तभी मैं उन की पूजा कर सकूँगा और उनके कमलनयनों और सुन्दर मुख को सदा निहार सकूँगा।" इस कथन में शांत रस अंगी है और दास्य अंग है।

एक अन्य कथन इस प्रकार है, "जरा इस भगद्भक्त की ओर देखो जो कृष्ण के चरणकमलों का स्मरण करके नाच रहा है। इसके नृत्य को देखते ही सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों के प्रति तुम्हारी सारी रुचि जाती रहेगी।" इस कथन में अंगी शान्त रस है और अंग है वीभत्स।

एक भक्त ने निर्भयतापूर्वक कहा, "हे प्रभु! अब मैं तरुणियों की संगति के किसी भी विचार से अपना मुख मोड़ रहा हूँ। जहाँ तक ब्रह्म-साक्षात्कार की बात है, उसमें मेरी कोई रुचि नहीं रही, क्योंकि मैं अब आपके चिन्तन में पूर्णरूपेण तल्लीन हूँ। इस तल्लीनता के कारण मेरी अन्य सारी इच्छाएँ जाती रही हैं, यहाँ तक कि योगशक्तियों की भी इच्छा शेष नहीं रही। अब मेरा मन केवल आपके चरणकमलों की पूजा में ही आकृष्ट है।" इस कथन में शान्त रस अंगी है और वीर रस अंग है।

अन्यत्र सुबल से कहा गया है, "हे सुबल! वृन्दावन की जिन सुन्दरियों को कृष्ण का चुम्बन प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ है वे अवश्य विश्व की अग्रगण्य भाग्यशाली स्त्रियाँ होंगी।" इस कथन में सख्य भक्ति-रस अंगी है और मधुर रस अंग है।

निम्नलिखित कथन में कृष्ण गोपियों से कहते हैं, "हे मुग्धाओ! तुम सब इस तरह लालची आँखों से मुझे मत घूरो। तुम संतुष्ट होओ और वृन्दावन के अपने-अपने घरों को लौट जाओ। तुम्हारे यहाँ रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।" जब कृष्ण उन व्रजांगनाओं से इस तरह परिहास कर रहे थे जो बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर कृष्ण के साथ रास रचाने आई थीं तो उस समय सुबल भी वहाँ उपस्थित था। अतएव वह बड़ी-बड़ी हँसीली आँखों से कृष्ण को देखने लगा। सुबल की भक्ति भावना में सख्य तथा हास्य का मिश्रण था। यहाँ पर सख्य रस अंगी है और हास्य रस अंग स्वरूप है।

निम्नलिखित उदाहरण में सख्य रस तथा हास्य रस का मिश्रण है जिसमें वे क्रमश: अंगी तथा अंग रस के रूप में आये हैं। जब कृष्ण ने सुबल को राधारानी के वेश में यमुना नदी के तट पर एक सुन्दर अशोक वृक्ष की छाया में चुपके से छिपे देखा तो वे तुरन्त आश्चर्य से उठ खड़े हुए। कृष्ण को देखकर सुबल ने अपने गालों को ढक कर अपनी हँसी छिपाने का प्रयास किया।

वात्सल्य तथा करुण रस के मिश्रण का भी उदाहरण प्राप्त होता है। जब यशोदा माता सोचतीं कि उनका पुत्र जंगल में छाते या जूते के बिना विचरण करता है तो वे यह सोचकर अत्यधिक व्यग्र हो उठतीं कि कृष्ण को कितनी कठिनाई महसूस हो रही होगी। इस उदाहरण में वात्सल्य रस अंगी है और करुण रस अंग है।

वात्सल्य रस तथा हास्य रस के मिश्रण का उदाहरण इस प्रकार है : माता यशोदा की एक सखी ने कहा "हे यशोदा! तुम्हारे बेटे ने मेरे घर से बड़ी चालाकी से मक्खन चुराया है। उसने उस मक्खन का कुछ अंश मेरे सो रहे बेटे के मुख पर इसलिए पोत दिया है कि मैं उसकी शैतानी के लिए अपने बेटे को दोषी ठहरा सकूँ।" यह सुनकर माता यशोदा की भौहें वक्र हो उठीं। उन्होंने हँसी के साथ केवल अपनी सखी को देखा। माता यशोदा हर एक को अपनी इस हँसीली मुद्रा से आशीर्वाद दें! इस उदाहरण में वात्सल्य रस अंगी है और हास्य रस अंग है।

भक्ति से युक्त अनेक रसों के मिश्रण का एक उदाहरण यह है : जब कृष्ण अपने बाएँ हाथ से गोवर्धन पर्वत उठाये हुए थे तो उनके बाल उनके कंधों पर बिखर गये थे और ऐसा लग रहा था कि उन्हें पसीना छूट गया है। जब माता यशोदा ने यह दृश्य देखा तो वे काँपने लगीं। फिर वे उस दृश्य को आँखें फाड़ कर देखने लगीं तो उन्होंने कृष्ण को तरह-तरह से मुँह बनाते (चिढ़ाते) देखा। तब यशोदा प्रसन्न होकर हँसने लगीं। जब फिर उन्होंने सोचा कि कृष्ण अत्यधिक लंबे समय से पर्वत को धारण किये हुए है तो पुन: उनके वस्त्र पसीने से तर हो उठे। माता यशोदा व्रजेश्वरी अपनी असीम कृपा से सारे ब्रह्माण्ड की रक्षा करें! इस उदाहरण में वात्सल्य रस तो अंगी है किन्तु भयानक, रौद्र, हास्य, करुण आदि रस अंग है।

मधुर रस तथा सख्य रस के मिश्रण का उदाहरण तब प्राप्त होता है जब श्रीमती राधारानी ने अपनी सखियों से कहा कि "हे सखियो! जरा देखो तो कृष्ण किस प्रकार अपने हाथ को सुबल के कंधे पर रखे हैं जिसने एक युवती के से वस्त्र धारण कर रखे हैं। मैं सोच रही हूँ कि वह सुबल के द्वारा मेरे पास कोई सन्देश भेज रहा है।" भाव यह है कि राधारानी के बड़े-बूढ़े नहीं चाहते थे कि कृष्ण या उनके संगी उसके साथ रहें; अतएव ये मित्र कभी-कभी स्त्री-वेश धारण कर लेते थे जिससे वे राधारानी को कृष्ण का सन्देशा पहुँचा सकें। इस उदाहरण में मधुर रस अंगी है और सख्य रस अंग है।

भक्ति में मधुर रस तथा हास्य रस के मिश्रण का उदाहरण इस प्रकार है। युवती के वेश में कृष्ण ने राधारानी से कहा, "अरे निष्ठुर लड़की! क्या तुम इतना भी नहीं जानती कि मैं तुम्हारी बहन हूँ? तुम मुझे पहचान क्यों नहीं पा रही? तुम मुझ पर कृपालु बन कर मेरे कन्धों को पकड़ो और प्रेमपूर्वक मेरा आलिंगन करो!" कृष्ण ये सुन्दर वचन राधारानी जैसा वेश धारण करके बोल रहे थे और श्रीमती राधारानी इनका

मन्तव्य समझ गई थीं। किन्तु क्योंकि वे अपने गुरुजनों के बीच थीं, वे केवल मुस्करा दीं, बोलीं कुछ नहीं। यहाँ मधुररस अंगी है और हास्य रस अंग है।

निम्नलिखित उदाहरण में कई भावों का मिश्रण दिखलाया गया है। जब चन्द्रावली की एक सखी ने देखा कि कृष्ण वृषासुर से लड़ने जा रहे हैं तो वह सोचने लगी, "कृष्ण कितने अद्‌भुत हैं! उनका प्रसन्न मन चन्द्रावली की भृकुटियों पर मुग्ध है, उनके सर्पवत् हाथ अपने मित्र के कन्धे पर हैं और साथ ही वे सिंह की तरह गरज कर वृषासुर को लड़ने के लिए उत्तेजित कर रहे हैं।" यह मधुर रस, सख्य रस तथा वीररस का उदाहरण है। इसमें मधुररस अंगी है और सख्य तथा वीर रस अंग है।

जब कुब्जा ने कामातुर होकर कृष्ण का पीताम्बर पकड़ लिया तो कृष्ण ने वहाँ पर खड़े और हँस रहे अनेक लोगों के समक्ष अपनी उद्दीप्त गालों के साथ अपने सिर को नीचा कर लिया। यह मधुर रस तथा हास्य रस का मिश्रण है। इसमें हास्य रस अंगी है और मधुर रस अंग है।

भद्रसेन से लड़ने के लिए सन्नद्ध ग्वालबाल विशाल को एक अन्य ग्वालबाल ने पुकारा, "मेरे समक्ष तुम अपनी वीरता दिखाने की क्यों चेष्टा कर रहे हो? इसके पूर्व तुमने श्रीदामा से भी लड़ने का प्रयास किया था, किन्तु तुम्हें यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि श्रीदामा सैकड़ों बलरामों से लड़ने की भी परवाह नहीं करता। तो फिर तुम इतने उत्तेजित क्यों हो जब कि वास्तव में तुम्हें कोई प्रधानता नहीं दी जा रही?" यह सख्य तथा वीर रस के मिश्रण का उदाहरण है। इसमें वीर रस अंगी है और सख्य रस अंग है।

शिशुपाल कृष्ण को गाली देने का आदी था। वह अपने इन अपमानों से कृष्ण को कम किन्तु पाण्डवों को ज्यादा उत्तेजित करता रहता था। अतएव पाण्डवों ने शिशुपाल का वध करने के लिए अपने को विभिन्न प्रकार के हथियारों से युक्त कर लिया था। उनके भाव रौद्र तथा सख्य रस के मिश्रण हैं जिसमें रौद्र रस अंगी है और सख्य रस अंग है।

एक बार कृष्ण जी श्रीदामा को बलराम के साथ लड़ते समय लाठी चलाते देख रहे थे। बलराम गदा-युद्ध करने में कुशल थे और उन्होंने अपनी गदा से प्रलम्बासुर का वध भी किया था। जब कृष्ण ने देखा कि बलराम एक छोटी सी लाठी धारण करने वाले श्रीदामा से हार गये हैं तो वे हर्षित हुए और श्रीदामा को बड़े आश्चर्य से देखने लगे। इस उदाहरण में अद्‌भुत, सख्य तथा वीर रसों का मिश्रण है। इसमें सख्य तथा वीर रस अंग है और अद्‌भुत रस अंगी है।

इन विविध प्रकार के रसों के दक्ष विश्लेषकों का निर्देश है कि जब विविध प्रकार के रस एक-दूसरे से मिल जाते हैं तो अंगी रस को स्थायी भाव कहा जाता है। *विष्णुधर्मोत्तर* में पुष्टि की गई है कि जब भक्ति के अनेक रस एकसाथ मिले हों तो अंगी रस को भक्ति का स्थायी भाव कहा जाता है। यद्यपि गौण रस कुछ काल तक व्यक्त होता रह सकता है, किन्तु अन्ततोगत्वा वह अंगी रस में मिल जाता है। इस तरह यह भक्ति का अवैधानिक या व्यभिचारी भाव कहलाता है।

अंगी तथा अंग के मध्य जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर उपमा दी जाती है। वामनदेव वास्तविक भगवान् हैं किन्तु वे इन्द्र के भाई के रूप में 'पैदा' हुए लगते थे। यद्यपि वामनदेव को कभी-कभी अल्प महत्त्वपूर्ण देवता माना जाता है, किन्तु वास्तव में वे देवराज इन्द्र के पालक हैं। इस प्रकार यद्यपि वामनदेव को कभी-कभी गौण देवता माना जाता है, किन्तु उनका वास्तविक पद परम पूर्ण का है जो समस्त देव प्रणाली का स्रोत है। इसी तरह से जो रस वास्तव में प्रधान होता है वह कभी-कभी गौण प्रतीत होता है यद्यपि इसका वास्तविक स्थान भक्त के प्रमुख भाव के रूप में होता है।

कोई व्यभिचारी भाव किसी समय पर प्रधान रूप में प्रकट होने पर भी अंग ही माना जाता है। यदि यह अत्यन्त प्रधान रूप में प्रकट नहीं होता तो यह अल्प रूप में प्रकट होकर शीघ्र ही अंगी रस में विलीन हो जाता है। किन्तु इतने कम प्राकट्य पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जैसे यदि कोई स्वादिष्ट भोजन कर रहा हो और उसके बीच घास का टुकड़ा भी खाया जाय तो न तो उसका स्वाद आता है न ही कोई उसके स्वाद को जानने का प्रयत्न करेगा।

अध्याय पचास

मिश्रित रसों का और आगे विश्लेषण

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है यदि कुछ विरोधी रस परस्पर मिलते हैं तो इस स्थिति को वैरी कहते हैं। यदि कोई खीर खा रहा हो और उसमें खट्टी या नमकीन वस्तु मिल जाय तो मिश्रण अधिक स्वादिष्ट नहीं रह जाता। इसे वैर या विरोध कहा जाता है।

वैर का आदर्श उदाहरण एक निर्विशेषवादी के कथन में मिलता है जो उच्च स्वर से शोक व्यक्त कर रहा था, ''मैं केवल निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूप में आसक्त रहा और मैंने समाधि का अभ्यास करने में ही अपना समय व्यर्थ गँवा दिया। मैंने उन श्रीकृष्ण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जो निर्विशेष ब्रह्म के उद्‌गम हैं और समस्त दिव्य आनन्द के आगार हैं।'' इस कथन में शान्त तथा मधुर रस लेशमात्र को है और इसमें रसों का विरोध है।

कभी-कभी वृन्दावन जैसे स्थानों में देखा जाता है कि कृष्ण के लिए थोड़ा सा शान्त रस वाला व्यक्ति तुरन्त ही कृत्रिम रूप से मधुर रस के पद को प्राप्त करने का यत्न करता है। किन्तु शान्त तथा मधुर रस में वैर होने से ऐसा व्यक्ति भक्ति के पद से च्युत हो जाता है।

एक महान भक्त ने शान्त रस के पद से वैर भाव व्यक्त किया जब उसने व्यंग्यपूर्वक प्रार्थना की ''मैं भगवान् कृष्ण का दर्शन करने को अत्यन्त उत्सुक हूँ, क्योंकि वे पितृलोक के पितरों से लाखों गुना वत्सल हैं और बड़े-बड़े देवताओं एवं मुनियों द्वारा पूजित हैं। किन्तु मुझे कुछ आश्चर्य सा हो रहा है कि यद्यपि कृष्ण लक्ष्मीपति हैं, उनके शरीर पर प्रायः सामान्य वेश्याओं के नखचिह्न दिखते हैं।'' यहाँ पर शान्त तथा उच्च मधुर रस के मिश्रण से रस विरोध उत्पन्न हुआ है।

एक गोपी का वाक्य है, ''हे कृष्ण! सर्वप्रथम तुम मुझे अपनी बलिष्ठ बाँहों में भर कर मेरा आलिंगन करो। तब मैं पहले तुम्हारे सिर को सूँघूँगी और फिर तुम्हारे साथ रमण करूँगी।'' यह वैर का उदाहरण है जिसमें मधुर रस अंगी है और दास्य रस अंग है।

एक भक्त बोला, "हे कृष्ण! मैं आपको अपना पुत्र कह कर कैसे पुकारूँ जब कि बड़े-बड़े वेदान्ती आपको परमसत्य कह कर और नारद पञ्चरात्र के अनुयायी वैष्णव आपको भगवान् कहकर पुकारते हैं? आप वही परम पुरुष हैं तो भला मेरी जिह्वा इतनी प्रगल्भ कैसे हो सकती है कि आपको सामान्य पुत्र कह कर पुकारे।" इस उदाहरण में शान्त तथा वात्सल्य रस का मिश्रण है और इस का परिणाम विरोध है।

एक अन्य भक्त ने कहा, "हे मित्र! मेरे यौवन का सौन्दर्य आकाश की बिजली के समान क्षणिक है; अतएव मेरे इस आकर्षक स्वरूप का होना महत्त्वहीन है। मैंने कभी कृष्ण से भेंट नहीं की; अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही मुझे उनसे मिलवा दें।" इस उदाहरण में वात्सल्य रस से शान्त रस मिश्रित होने के कारण वैर भाव है।

एक बार कैलास में एक कामोन्मत्त स्त्री ने कृष्ण से कहा "हे कृष्ण! तुम चिरायु होओ!" यह कहकर उसने कृष्ण का आलिंगन कर लिया। यह रसाभास का उदाहरण है जिसमें वात्सल्य रस तथा मधुर रस का मिश्रण है।

उपर्युक्त विश्लेषण का उद्देश्य यह दिखलाना है कि यदि कृष्ण तथा भक्तों के प्रेम के आदान-प्रदान या रसों के मिश्रण में शुद्धता नहीं है तो रसाभास होगा। रूप गोस्वामी जैसे महान भक्तों के मतानुसार जब भी विरोधी भाव होते हैं तो वैर (रसाभास) उत्पन्न होता है।

एक बार एक भक्तिन ने कृष्ण से कहा, "हे बालक! मैं जानती हूँ कि मेरा यह शरीर मांस तथा रक्त से बना है और तुम्हारे लिए कभी भोग्य नहीं हो सकता। फिर भी मैं तुम्हारे सौन्दर्य से इतनी आकृष्ट हूँ कि मेरी इच्छा है कि तुम मुझे अपनी प्रेयसी बना लो।" इस कथन में विरोध का कारण भक्ति में वीभत्स तथा मधुर रसों के मिश्रण का होना है।

श्रील रूप गोस्वामी भक्तों को चेतावनी देते हैं कि वे अपनी कृतियों में या अपने आचरण में ऐसे रसाभास न करें। ऐसे विरोधी भावों की उपस्थिति *रसाभास* कहलाती है। यदि कृष्णभावनामृत सम्बन्धी किसी पुस्तक में ऐसा रसाभास होगा तो कोई भी विद्वान या भक्त उसे मान्यता नहीं प्रदान करेगा।

विदग्ध-माधव में (२.१७) पौर्णमासी का कथन नांदीमुखी के प्रति है, "जरा देखो तो, यह कितना अद्भुत है! बड़े-बड़े मुनि सारे भौतिक कार्यों से फुरसत पाकर

कृष्ण का ध्यान करते हैं और बड़ी कठिनाई से कृष्ण को हृदय में आसीन कर पाते हैं। इसके सर्वथा विपरीत यह तरुणी है जो अपने मन को कृष्ण से हटाना चाहती है जिससे वह उसे इन्द्रिय-तृप्ति के भौतिक कार्यों में लगा सके। यह खेद की बात है कि यह तरुणी अपने हृदय से उसी कृष्ण को भगा देना चाह रही है जिसे बड़े-बड़े मुनि कठिन तपस्याएँ करके प्राप्त करना चाहते हैं।" यद्यपि इस कथन में भक्ति के विरोधी रस हैं, किन्तु उनमें वैर नहीं है क्योंकि इसमें मधुर रस इतना उच्च है कि यह अन्य सारे रसों को पराजित कर रहा है। श्रील जीव गोस्वामी की इस सम्बन्ध में टिप्पणी है कि मन की ऐसी प्रेम अवस्था हर एक के लिए सम्भव नहीं है। यह मात्र वृन्दावन की गोपियों के लिए सम्भव है।

विरोधी रसों के अनेकानेक उदाहरण हैं जिनमें *रसाभास* का विकृत अनुभव नहीं होता। एक बार स्वर्ग के किसी उपदेवता ने कहा, "उन कृष्ण पर, जिनके विनोद कभी व्रजवासियों के लिए हँसी के स्रोत बनते थे, आज नागराज कालिय ने आक्रमण कर दिया है और वे सभी के अतिशय शोक के कारण बने हुए हैं।" इस उदाहरण में हास्य तथा करुण रस का मिश्रण है किन्तु विरोध नहीं है क्योंकि इन दोनों रसों से कृष्ण के प्रति प्रेम में वृद्धि हो रही है।

एक बार किसी ने श्रीमती राधारानी से कहा कि यद्यपि आपने सारे कार्य बन्द कर दिये हैं, किन्तु आप अब भी सभी प्रकार की भक्ति के लिए प्रेरणा-स्रोत बनी हुई हैं। यह कथन इस प्रकार है "हे राधारानी! आप कृष्ण के विरह में उस सर्वसुन्दर वृक्ष के समान निश्चल हैं जिसकी शोभा पत्तों के किसी भी छादन से अवरुद्ध नहीं होती। आपकी शान्त मुद्रा से लगता है कि आप ब्रह्म-साक्षात्कार में तल्लीन हैं।" इस उदाहरण में मधुर रस तथा शान्त रस का मिश्रण है, किन्तु मधुर रस ने सबों को परास्त कर दिया है। वास्तव में ब्रह्म-साक्षात्कार वृद्धिरोध है। साक्षात् कृष्ण का कथन है, "श्रीमती राधारानी मेरे लिए साक्षात् शान्ति बन चुकी है। उनके कारण मैं अब सो नहीं पाता हूँ। मैं अपलक निहारता रहता हूँ और सदैव ध्यान-मुद्रा में रहता हूँ। उन्हीं के कारण मैंने अपना घर भी पर्वत की कन्दरा में बना लिया है।" यह शान्त रस से मिश्रित मधुर रस का उदाहरण है जिसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

निम्नलिखित वार्तालाप सुप्रसिद्ध सुन्दरी रम्भा से पूछे गये प्रश्नों एवं उनके उत्तरों के रूप में है। रम्भा से पूछा गया, "हे रम्भे! तुम कौन हो?" उसने उत्तर दिया "मैं साक्षात् शान्ति हूँ।"

प्रश्न : तो फिर तुम आकाश में क्यों हो ?

उत्तर : परमसत्य का अनुभव करने के लिए मैं आकाश में हूँ।

प्रश्न : तो फिर तुम घूर क्यों रही हो ?

उत्तर : परम सत्य की परम सुन्दरता निहारने के लिए।

प्रश्न : तो फिर मन से विक्षुब्ध क्यों लगती हो ?

उत्तर : क्योंकि कामदेव सता रहा है।

उपर्युक्त उदाहरण में भी रसों का विरूपण (रसाभास) नहीं हुआ, क्योंकि मधुर रस अंगी होने के कारण शान्त भक्ति रस से आगे बढ़ गया है।

श्रीमद्भागवत में (१०.६०.४५) रुक्मिणी देवी कहती हैं, "हे प्रिय! जिस स्त्री को आपके साक्षात् स्पर्श से मिलने वाले दिव्य आनन्द में रुचि नहीं होती वह अपने पति के रूप में ऐसे पुरुष को स्वीकार करना चाहेगी जिसका शरीर बाहर से मूँछ, दाढ़ी, रोम, नाखून तथा सिर के बाल का समूह हो, अर्थात् जिसके भीतर पेशियाँ, अस्थियाँ, रक्त, कीड़े, मल, कफ, पित्त जैसी वस्तुएँ रहती हों। वास्तव में ऐसा पति शवतुल्य है किन्तु चूँकि वह आपके दिव्य स्वरूप के प्रति आकृष्ट नहीं होती इसलिए उस स्त्री को मल तथा मूत्र के इस समूह को अपना पति स्वीकार करना होगा।" इस कथन में भौतिक शरीर के अवयवों की सूची दी गई है किन्तु यह दिव्य साक्षात्कार के लिए विकृत रस नहीं है, क्योंकि यह पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर को स्पष्ट करने वाला है।

विदग्ध-माधव में (२.३१) कृष्ण अपने मित्र को बतलाते हैं, "हे मित्र! यह कितनी विचित्र बात है कि जब से मैंने राधारानी के सुन्दर कमलनेत्रों को देखा है तब से मेरा चाँद तथा कमल के फूल पर थूकने का मन करने लगा है।" यह वीभत्स मिश्रित मधुर रस का उदाहरण है जिसमें वैर नहीं है।

निम्नलिखित कथन में भक्ति के विभिन्न रसों का वर्णन हुआ है, "यद्यपि कृष्ण किसी भी शत्रु के लिए अजेय थे किन्तु वृन्दावन के ग्वालबाल कुरुक्षेत्र युद्ध-स्थल में कृष्ण के अद्भुत राजसी वस्त्र तथा उनकी युद्ध कला को देखकर आश्चर्य से काले पड़ गए।" इस कथन में यद्यपि भक्ति में वीर रस तथा अद्भुत रस का मिश्रण है किन्तु रसाभास नहीं है।

एक मथुरा निवासिनी स्त्री ने अपने पिता से कहा कि द्वार बन्द करके मेरे साथ कृष्ण को खोजने सान्दीपनि मुनि की पाठशाला चलो। उसने शिकायत की थी कि कृष्ण

ने उसका चित्त पूरी तरह चुरा लिया है। इस घटना में मधुर रस तथा वात्सल्य प्रेम का मिश्रण होते हुए भी कोई रसाभास नहीं है।

एक ब्रह्मानन्दी (निर्विशेषवादी) ने अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की, "वह समय कब आयेगा जब मैं उन सच्चिदानन्द परब्रह्म का दर्शन कर सकूँगा जिनका वक्षस्थल रुक्मिणी के स्तनों के स्पर्श से लाल कुंकुमचूर्ण से लिप्त हो गया है!" यहाँ पर मधुर रस तथा शान्त रस का मिश्रण है। यद्यपि यह रसों का विरोध है किन्तु उनमें वैर (रसाभास) नहीं है, क्योंकि ब्रह्मानन्दी तक कृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाता है।

नन्द महाराज ने अपनी पत्नी से कहा, "हे यशोदे! यद्यपि तुम्हारा पुत्र कृष्ण मल्लिका पुष्प की भाँति कोमल एवं मृदु है तो भी वह पर्वत के समान बलशाली केशी असुर का वध करने गया है। अतएव मैं कुछ-कुछ विचलित हूँ। किन्तु चिन्ता न करो, मेरे पुत्र का कल्याण हो। मैं अपने स्तम्भ जैसे बलशाली हाथ को उठाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उस केशी असुर को मार कर व्रजमण्डल के सारे वासियों को चिन्तामुक्त कर दूँगा।" इस कथन में दो प्रकार के रस हैं—वीर तथा भयानक किन्तु दोनों ही वात्सल्य प्रेम के पद को उठाने वाले हैं, अतएव उनमें विरोध नहीं है।

श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* में कहा गया है, "कंस की यज्ञशाला में कृष्ण के पदार्पण के बाद कंस के पुरोहित ने कृष्ण को घृणा-भाव से देखा। कंस तथा उसका पुरोहित भय से भरे थे किन्तु कृष्ण के मित्रों के कपोलों में आनन्द के चंचल भाव थे। उनके ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वियों में निराशा का भाव था। महर्षिगण ध्यान करने लगे। देवकी तथा अन्य मातृतुल्य स्त्रियों की आँखों में गर्म आँसू आ गये और दक्ष योद्धाओं के शरीर में रोमांच हो आया। इन्द्र जैसे देवताओं के मनों में आश्चर्य था। सेवकगण नाचने लगे और समस्त तरुणियों की चंचल आँखें इधर-उधर देखने लगीं।" इस कथन में विभिन्न रसों का मिश्रण है, किन्तु विरोध नहीं है।

ललित-माधव में ही ऐसा एक अन्य कथन है जो विरोध से रहित है जिसमें पुस्तक का लेखक पाठकों को इस प्रकार आशीर्वाद देता है, "यद्यपि भगवान् अपने बाएँ हाथ की अँगुली से पर्वत उठाने में समर्थ हैं, किन्तु वे सर्वदा विनम्र तथा दीन हैं। वे अपने प्रेमी भक्तों के प्रति सदैव अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने इन्द्र-यज्ञ के सम्पन्न होने को रोक कर इन्द्र द्वारा बदला लेने के प्रयास को विफल किया। वे समस्त तरुणियों के लिए समस्त आनन्द के कारण हैं। वे आप सबों पर सदा दयालु रहें!"

अध्याय इकावन

रसाभास

रसाभास अर्थात् रसों के विरोधी मिश्रण को *उपरस* (मिथ्या कथन), *अनुरस* तथा *अपरस* (विकृत रस) में वर्गीकृत किया जा सकता है।

निम्नलिखित कथन ऐसे निर्विशेषवादी का है जिसने अभी-अभी कृष्ण का दर्शन किया है, "जब मनुष्य भौतिक संसार के सारे कल्मष को पूरी तरह पार कर लेता है तो वह समाधि में स्थिर होकर दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है। किन्तु हे आदि भगवान्! ज्योंही मैंने आप को देखा मुझे वही आनन्द मिला।" इस रसाभास का नाम शान्त उपरस अथवा निर्विशेषवाद तथा साकारवाद के मिश्रण का विकृत प्रतिबिम्ब है।

एक अन्य कथन भी है, "जहाँ कहीं भी नजर डालता हूँ केवल आप दिखते हैं। अतएव मैं जानता हूँ कि आप कल्मषरहित ब्रह्मज्योति एवं समस्त कारणों के कारण हैं। मेरा विचार है कि इस ब्रह्माण्ड में आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।" यह भी उपरस का एक अन्य उदाहरण है।

जब कृष्ण का प्रिय सखा मधुमंगल परिहास में कृष्ण के समक्ष नाच रहा था तो उसकी ओर कोई नहीं देख रहा था; अतएव उसने हँसी में कहा, "हे प्रभु! मेरे ऊपर कृपा करें। मैं आपकी कृपा के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ।" यह सख्य तथा शान्त के उपरस का उदाहरण है।

एक बार कंस ने अपनी बहन देवकी से कहा, "हे बहन! तुम्हारे पुत्र को देख कर मैं सोचता हूँ कि वह इतना बलिष्ठ है कि वह पर्वत जैसे बलशाली मल्लों को भी मार सकता है। अतएव यदि वह भीषण युद्ध भी करे तो मुझे उसके विषय में कोई चिन्ता नहीं होगी।" यह वात्सल्य प्रेम के विकृत प्रतिबिम्ब के रूप में उपरस का उदाहरण है।

ललित-माधव में श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं, "याज्ञिक ब्राह्मणों की सभी पत्नियाँ तरुणी थीं और वे वृन्दावन की गोपियों के ही सदृश कृष्ण के प्रति आकृष्ट थीं। अपने आकर्षण के कारण ही वे कृष्ण को भोजन बाँटा करती थीं। यहाँ पर दो

भक्ति रस हैं—मधुर रस तथा वात्सल्य रस और इनका परिणाम मधुर रस का उपरस कहलाता है।

श्रीमती राधारानी की एक सखी ने कहा, "हे सखी गांधर्विका (राधारानी)! तुम हमारे गाँव की सबसे साध्वी लड़की थी, किन्तु अब तुमने अपने को विभाजित कर दिया है—आंशिक रूप से साध्वी हो और आंशिक रूप से असाध्वी हो। यह सब कृष्ण को देखने और उनकी वंशी की ध्वनि सुनने के बाद तुम पर कामदेव के प्रभाव के कारण है।" यह माधुर्य प्रेम में विभक्त रुचियों से जनित उपरस का एक अन्य उदाहरण है।

कतिपय दक्ष विद्वानों के अनुसार प्रेमी तथा प्रेमिका (नायक-नायिका) के भाव कई प्रकार से रसाभास उत्पन्न करते हैं—"कृष्ण की चितवन से गोपियाँ शुद्ध हो गईं जिसके कारण उनके शरीरों पर कामदेव का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।" यद्यपि लोकदृष्टि से किसी बालक द्वारा किसी बालिका पर दृष्टि डालना एक प्रकार का दूषण माना जाता है, किन्तु जब कृष्ण ने गोपियों पर अपनी दिव्य दृष्टि डाली तो वे शुद्ध हो गईं। दूसरे शब्दों में, चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं, अतएव उनका कोई भी कार्य दिव्य रूप से शुद्ध है।

जब कृष्ण ने यमुना नदी में कालियनाग के फनों पर नाच कर उसे दण्ड दिया तो उसकी पत्नियों ने कृष्ण से कहा, "हे ग्वालबाल! हम कालियनाग की तरुण पत्नियाँ हैं; अतएव अपनी वंशी की ध्वनि से हमारे मन को क्यों क्षुब्ध करते हो?" कालिय की पत्नियाँ कृष्ण की चापलूसी कर रही थीं जिससे वे उनके पति को छोड़ दें। अतएव यह मिथ्या वचन अर्थात् *उपरस* का उदाहरण है।

एक भक्त ने कहा, "हे गोविन्द! कैलास में यह एक सुन्दर पुष्पित कुंज है। मैं तरुणी हूँ और तुम भावुक तरुण हो। अब इससे अधिक क्या कहूँ? जरा विचार करो।" यह माधुर्य प्रेम में धृष्टताजनित उपरस है।

जब नारद मुनि वृन्दावन से गुजर रहे थे तो वे भाण्डीरवन पहुँचे और उन्होंने उसके एक वृक्ष पर वह सुप्रसिद्ध शुकदम्पति दिखा जो सदैव कृष्ण के साथ रहता था। यह दम्पति किसी वार्तालाप का अनुकरण कर रहा था जिसे उसने वेदान्त दर्शन पर सुना था। इस प्रकार वे विभिन्न दार्शनिक बातों पर तर्क-वितर्क करते प्रतीत हो रहे थे। यह देखकर नारद मुनि आश्चर्यचकित रह गये और वे अपलक दृष्टि से देखने लगे। यह *अनुरस* का उदाहरण है।

जब कृष्ण युद्धभूमि से भाग रहे थे तो जरासन्ध दूर स्थान से चंचल नेत्रों से उन्हें देख रहा था और गर्व का अनुभव कर रहा था। वह अपनी विजय से गर्वित होकर बारम्बार हँस रहा था। यह *अपरस* का उदाहरण है।

कृष्ण से सम्बन्धित हर वस्तु भक्ति में अनुभाव कहलाती है यद्यपि यह अनुभाव भिन्न-भिन्न विधियों से प्रकट हो सकता है—कभी सही विधि से तो कभी विकृत प्रतिबिम्ब के रूप में। समस्त दक्ष भक्तों के मतानुसार कृष्ण के प्रति भाव का उद्दीपन करने वाली हर वस्तु को दिव्य रस का उद्दीपन मानना चाहिए।

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी कृत *श्री भक्तिरसामृतसिन्धु* का भक्तिवेदान्त सार पूर्ण हुआ।

भक्तिरसामृत सिन्धु की तरंगें

सिन्धु की तरह *भक्तिरसामृतसिन्धु* मूलत: चार अनुभागों में विभाजित है—पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा उत्तरी। इन अनुभागों में से प्रत्येक के विविध उपअनुभाग हैं, जो "तरंगें" कहलाती हैं। *भक्तिरसामृतसिन्धु* की तंरगें इस प्रकार हैं—(पृष्ठ संख्या श्रील प्रभुपादकृत ग्रंथ के अनुसार हैं)

पूर्वी दिशा—भगवद्भक्ति भेद

प्रथम तरंग: सामान्य-भक्ति- ३

द्वितीय तरंग: साधन-भक्ति- ५३

तृतीय तरंग: भावभक्ति- १३३

चतुर्थ तरंग: प्रेमभक्ति- १४५

दक्षिणी दिशा—सामान्य भगवद् भक्तिरस

प्रथम तरंग: विभाव- १५१

द्वितीय तरंग: अनुभाव- २१९

तृतीय तरंग: सात्त्विक-भाव- २२३

चतुर्थ तरंग: व्यभिचारी-भाव- २३३

पंचम तरंग: स्थायी-भाव- ७१

पश्चिमी दिशा—मुख्य भक्तिरस

प्रथम तरंग: शान्त-भक्ति-रस- २७९

द्वितीय तरंग: प्रीति-भक्तिरस- २८१

तृतीय तरंग: प्रेयो-भक्तिरस (सख्य)- ३१५

चतुर्थ तरंग: वत्सल-भक्तिरस- ३३१

पंचम तरंग: मधुर-भक्ति-रस- ३४९

उत्तरी दिशा—गौण भक्तिरस

प्रथम तरंग: हास्य-भक्तिरस-	३५५
द्वितीय तरंग: अद्‌भुत-भक्ति-रस-	३५९
तृतीय तरंग: वीर-भक्तिरस-	३६०
चतुर्थ तरंग: करुण-भक्तिरस-	३६१
पंचम तरंग: रौद्र-भक्ति-रस-	३६८
षष्ठम तरंग: भयानक-भक्तिरस-	३७३
सप्तम तरंग: वीभत्स-भक्तिरस-	३७५
अष्टम तरंग: मैत्री-वैर-स्थिति (रसों का मिश्रण)	३७७
नवम तरंग: रसाभास	३८९

◆◆◆

सन्दर्भ

भक्तिरसामृतसिन्धु में प्रामाणिक वैदिक शास्त्रों से उद्धरण दिये गये हैं। जिन विशेष प्रामाणिक शास्त्रों से उद्धरण दिए गए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है।

आदि पुराण
अगस्त्य संहिता
अग्नि पुराण
अपराध भञ्जन
भगवद्‌गीता
भविष्य पुराण
ब्रह्माण्ड पुराण
ब्रह्म पुराण
ब्रह्म संहिता
ब्रह्म यामला
ब्रहद वामन पुराण
चैतन्य-चरितामृत
दान-केलि-कौमुदि
गरुड़ पुराण
गीत-गोविन्द
गोविन्द-विलास
हंसदूत
हरिभक्ति सुधोदया
हरिभक्ति विलास
हरिभक्ति विवेक
हरि वामसा

हरिभ्रया पंचतंत्र
कृष्ण कर्णामृत
लीला माधव
लिंग पुराण
महाभारत
महाकर्म पुराण
मुकुन्द माला स्त्रोत
नारद-पञ्चरात्र
नारदीय पुराण
नृसिंह पुराण
पद्म पुराण
पद्यावली
प्रह्लाद-संहिता
शिक्षाष्टक
स्कन्द पुराण
श्रीमद्भागवतम्
शुक-संहिता
वराह पुराण
विदग्ध-माधव
विष्णु धर्म
विष्णु धर्मोत्तर
विष्णु पुराण
विष्णु रहस्य

◆◆◆

सन्दर्भ कोश

अर्चना—भक्ति-कार्य के अंग-स्वरूप अर्चाविग्रह की पूजा।

आचार्य—उदाहरण देकर शिक्षा देने वाला प्रामाणिक गुरु।

आरती—भगवान् को अर्चाविग्रह रूप में दीप तथा अन्य व्यंजन भेंट चढ़ाकर अभिनन्दन करने की मानक पूजा विधि।

इन्द्र—प्रशासनिक देवताओं का प्रमुख तथा स्वर्गलोकों का राजा।

इन्द्रनील—नीलम मणि।

उपनिषद्—वेदों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक अंग जिन का उद्देश्य विद्यार्थी को परम सत्य के स्वभाव के ज्ञान के निकट लाना है।

एकादशी—कृष्ण के अधिकाधिक स्मरण के लिए उपवास का विशिष्ट दिन जो दोनों पक्षों में ग्यारहवीं तिथि को पड़ता है। इस दिन अन्न खाना मना है।

कमण्डलु—संन्यासी का जल पात्र; ब्रह्माजी का प्रतीक।

कीर्तन—भगवान् के नामों तथा महिमा का उच्चारण; भक्ति की नौ प्रमुख विधियों में से एक।

कुंकुम—सिंदूर।

कैशोर—कृष्ण की ग्यारहवें वर्ष से लेकर पन्द्रहवें वर्ष तक की आयु।

कौमार—कृष्ण की पाँच वर्ष के बाद की बाल्यावस्था।

क्षत्रिय—योद्धा या प्रशासक; चतुर्वर्णों में से द्वितीय वर्ण।

गोकुल-वृन्दावन—सर्वोच्च लोक; द्विभुजी आदि-रूप भगवान् कृष्ण का निजी धाम।

गोपियाँ—ग्वालबालाएँ; वृन्दावन में कृष्ण की मित्र तथा उनकी परम विश्वसनीय सेविकाएँ।

गोपिचन्दन—वृन्दावन से लाई गई पवित्र मिट्टी, जिससे भक्तगण अपने शरीर को चिह्नित करते हैं।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय—श्रीचैतन्य महाप्रभु की परम्परा में वैष्णव मत का सम्प्रदाय।

चन्दन—सुगन्धित काष्ठ, जिसका लेप शरीर पर लगाया जाता है।

चरणामृत—भगवान् के अर्चाविग्रह के चरणों को नहलाने से बचा हुआ जल।

तिलक—भक्त के शरीर पर मिट्टी के शुभ चिह्न।

दास्य—सेवक भाव से भक्ति, पाँच प्रधान रसों में से एक।

देवता—वे जीव जिन्हें भगवान् ने ब्रह्माण्ड के कार्य-कलापों के नियन्त्रक के रूप में अधिकार दे रखा है।

द्वारका—एक ऐश्वर्यवान राजकुमार के रूप में भगवान् कृष्ण की लीलास्थली नगरी।

नृसिंह—भगवान् विष्णु का अवतार जिसमें वे अर्ध पुरुष तथा अर्ध सिंह रूप में अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने तथा हिरण्यकशिपु असुर का वध करने के लिए प्रकट हुए थे।

पिंड—दिवंगत पूर्वजों को अर्पित किया जाने वाला विशेष भोजन।

पुराण—परमेश्वर के विविध अवतारों तथा भक्ति विषयक विस्तृत आदेशों से युक्त वेदों के ऐतिहासिक पूरक ग्रंथ।

पौगण्ड—कृष्ण की बाल्यावस्था के छठे से दसवें वर्ष तक का अन्तराल।

प्रसाद—"भगवान् की कृपा"; भगवान् को अर्पित किये जाने के फलस्वरूप आध्यात्मीकृत भोजन, भोग।

प्राकृत-सहजियाः—एक नकली वैष्णव जो माधुर्य प्रेम को महत्त्वहीन समझता है।

पद्मराग—माणिक।

ब्रह्मा—सबसे पहला जीव तथा भौतिक ब्रह्माण्ड का गौण स्रष्टा।

ब्रह्म—परम सत्य; विशेषकर उसका निर्गुण-निराकार पक्ष।

ब्रह्मानन्द—ब्रह्म का साक्षात्कार करने से प्राप्त आनन्द।

ब्रह्मास्त्र—वैदिक मन्त्रोच्चार से उत्पन्न नाभिकीय हथियार।

ब्राह्मण—वेदों में पटु, जो समाज का मार्गदर्शन कर सके; प्रथम वैदिक सामाजिक वर्ण।

भगवद्गीता—भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्त अर्जुन के मध्य हुआ वार्तालाप जिसमें आध्यात्मिक सिद्धि के लिए भक्ति को प्रमुख साधन तथा चरम लक्ष्य बतलाया गया है।

मन्त्र—वैदिक उच्चार; वह ध्वनि जो मन को मोह से उबारे।

मदनमोहन—भगवान् कृष्ण जो कामदेव को भी मोहने वाले हैं।

मरकत—मरकत मणि।

माया—भगवान् की मोहिनीशक्ति; कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूलने की अवस्था।

मुक्ति—बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के चक्र से उद्धार।

यमराज—पापी जीवात्माओं की मृत्यु तथा उन्हें दण्ड देने के लिए जिम्मेदार देवता।

रथ-यात्रा—भगवान् जगन्नाथ, उनके भाई बलराम तथा बहन सुभद्रा के अर्चाविग्रहों को मन्दिर से बाहर लाकर विशाल रथों में आरूढ़ कराने का वार्षिक उत्सव।

रस—भगवान् के साथ विशेष आध्यात्मिक सम्बन्ध का दिव्य "आस्वाद"।

रसाभास—विरोधी रसों का अनुपयुक्त मिश्रण।

वात्सल्य—भक्ति में माता-पिता का भाव; पाँच प्रधान रसों में से एक।

वेद—स्वयं भगवान् द्वारा कथित मूल अपौरुषेय शास्त्र ग्रंथ।

वेदान्त—"वेदों का निष्कर्ष"; परब्रह्म के स्वभाव का संक्षेपण करने वाले सूत्रों का श्रील व्यासदेव द्वारा संकलन।

वैकुण्ठ—ईश्वर का धाम जो "समस्त चिन्ताओं से मुक्त है"।

वैश्य—किसान तथा वणिक; वैदिक सामाजिक व्यवस्था के चार वर्णों में से तीसरा वर्ण।

वैष्णव—भगवान् विष्णु या कृष्ण का भक्त।

व्रज—देखिये वृन्दावन।

वृन्दावन—कृष्ण का निजी धाम जहाँ वे माधुर्य भाव पूर्णरूपेण प्रकट करते हैं; उत्तरी भारत का एक ग्राम जहाँ कृष्ण ने इस धरा पर अवतार लेकर अपनी अत्यन्त घनिष्ठ लीलाएँ सम्पन्न कीं।

शान्त—पाँच प्रधान रसों में से एक; भक्ति में भक्तों का उदासीन भाव जिस में वे सेवा में क्रियाशील नहीं होते।

शास्त्र—धर्म ग्रन्थ; पूरकों तथा भाष्यों समेत सारे वेद।

शूद्र—श्रमिक; वैदिक समाज व्यवस्था का चतुर्थ वर्ण।

श्रीमद्भागवत —"निष्कलंक पुराण" जिसमें भगवद्भक्ति का साँगोपाँग वर्णन है। इसका प्रवचन ५००० वर्ष पूर्व शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज से किया था और नैमिषारण्य में ऋषियों की सभा में इसका पुनराख्यान सूत गोस्वामी द्वारा हुआ। इसमें बारह स्कन्धों के अन्तर्गत १८ हजार श्लोक हैं।

संकीर्तन—भगवान् के पवित्र नाम का जोर-जोर से सामूहिक उच्चारण; इस युग के लिए आध्यात्मिक साक्षात्कार हेतु स्वीकृत विधि।

संन्यासी—संन्यास आश्रम को प्राप्त; चतुर्थ वैदिक आश्रम।

समुत्कण्ठा—प्रबल उत्सुकता।

साधक—आध्यात्मिक जीवन में सिद्धि के लिए प्रयासरत व्यक्ति।

साधन-भक्ति—भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था जिसमें विधि-विधानों पर ध्यान दिया जाता है।

सिद्धि—योगाभ्यास द्वारा प्राप्त की जाने वाली यौगिक शक्ति।

◆◆◆